

---

## इकाई 6 विकास की राजनीतिक अर्थव्यवस्था

---

### संरचना

- 6.1 प्रस्तावना
- 6.2 भूमंडलीय विभाजन
- 6.3 दरिद्रता : आय का तुलनात्मक अध्ययन
- 6.4 सार्वभौमिक सामाजिक वस्तुस्थिति : गलत विकास की अनिवार्यताएँ
- 6.5 विकास : राजनीतिक अर्थव्यवस्था की कार्यसूची
- 6.6 राजनीतिक अर्थव्यवस्था के कुछ महत्वपूर्ण पहलू : विकास के सिद्धांत
- 6.7 पूँजी संचयन : भूमिका और सीमाएँ
- 6.8 अन्तरराष्ट्रीय पूँजी प्रवाह
- 6.9 राज्य की भूमिका
- 6.10 विकास के अर्थशास्त्र में प्रतिकारी क्रांति : उदारीकरण, निजीकरण, भूमंडलीकरण (LPG) पैकेज
- 6.11 राजनीतिक अर्थव्यवस्था अभिगम की रूपरेखा
- 6.12 सारांश
- 6.13 अभ्यास

---

### 6.1 प्रस्तावना

---

भारत एक प्राचीन सभ्यता वाला और धनधान्य से पूर्ण उप महाद्वीपीय देश है जिसमें मानवता का लगभग छठा भाग निवास करता है। यहाँ अधिकांश लोग अत्यधिक दरिद्रता का जीवन बसर करते हैं यद्यपि इसका एक अल्पसंख्यक वर्ग ऐसा है जिसका जीवन स्तर विश्व के श्रेष्ठतम देशों जैसा है। यह एकमात्र कारण नहीं है जिसके लिए इसे एक अत्यधिक विषमताओं वाला देश कहा जाए। ग्रेट ब्रिटेन जो आधुनिक औद्योगिकीकरण का अग्रणी है और जिसका विश्व के इतिहास में एक लम्बी अवधि के लिए आधुनिकीकरण-उद्योगीकरण की प्रक्रिया पर वर्चस्व बना रहा, के हाथों राजनीतिक अधीनता के आधार पर उसकी उपनिवेशी सत्ता के तत्वावधान में घटित जिसे हम आमतौर पर आधुनिकता का नाम देते हैं के मुकाबले में भारत एक विविधताओं ओर बहुलताओं से भरा देश है। यद्यपि भारत ने अपने जन समुदाय, स्वतंत्रता के लिए लोकप्रिय संघर्ष के माध्यम से उपनिवेशी शासन से अपने को सफलतापूर्वक मुक्त कर लिया है तथापि यह अभी अपनी एक अरब से अधिक जनसंख्या के लिए जिन्हें पाने की अपेक्षा कर रहा है वे हैं : जीवन स्तर, इसके संसाधनों के अनुरूप प्रतिष्ठा और शक्ति सम्पन्नता, समृद्ध विरासत, उन उच्च मूल्य वाली लोकतांत्रिक व्यवस्था जिसे मानवता ने आज प्राप्त कर लिया है और समृद्ध मानवीय आचरण। यह अपने नागरिकों के लिए उसे प्राप्त करने के लिए एक श्रमसाध्य संघर्षरत है जो उनका प्राप्य है परन्तु उन्हें लम्बे समय से नहीं मिल पा रहा है तथा जो विकास की राजनीतिक अर्थव्यवस्था के लिए मौलिक चुनौती है। इतिहास गवाह है कि भारत किस प्रकार पिछड़ता रहा और लगातार विकासोन्मुख अंतर्ग्रथित विश्व में बहुमूल्य ऐतिहासिक अवसरों को खोता रहा। इसकी आन्तरिक

प्रक्रियाएँ समय व्यतीत होते-होते दुष्प्रक्रियात्मक और प्रतिउत्पादक बन गई। भारत के विकास की आर्थिक व्यवस्था का भूमंडलीय ताकतों, प्रक्रियाओं तथा परिस्थितियों के संदर्भ में पुनरीक्षण और विश्लेषण करना पड़ेगा।

---

## 6.2 भूमंडलीय विभाजन

---

गरीबी, बेरोज़गारी, बीमारी, दरिद्रता, बार-बार पड़ने वाले अकाल, अपराध और व्यापक असमानताएँ खुले तौर पर दृश्यमान हैं परन्तु इनमें भारत सहित विशाल पृथ्वी के विभिन्न हिस्सों में अक्सर परिवर्तन होता रहता है। यद्यपि विश्व का कोई भाग इन अपरिहार्य समस्याओं से पूर्णरूपेण मुक्त नहीं है, तदपि विश्व के दो-तिहाई अरब से अधिक मनुष्य अर्थात् विश्व का अधिकांश इस बीभत्स प्रारब्ध को व्यग्रता की सीमा तक भुगतते हैं। समृद्ध और उच्च आय वाले देशों में, ऐसे देश जो (OECD) के हिस्से हैं, उनकी औसत आय बहुत अधिक होने के बावजूद, अत्यधिक गरीबी, बार-बार और प्रायः बढ़ने वाली बेरोज़गारी (प्रतिशतता की ऐसी सीमा जिसे और कम न किया जा सके), आय, धन, सामाजिक-आर्थिक प्रतिष्ठा की बढ़ती हुई असमानताएँ, अपितु सामाजिक असुरक्षा में वृद्धि और देशान्तर गमन और निराशाजनक स्थिति की अनियंत्रित समस्याएँ हैं। ये बहुत ही गंभीर हैं और इसे वस्तुतः भारत सहित सैकड़ों देशों के प्रमुख लक्षणों को परिभाषित करने में प्रयोग किया जा सकता है। ऐसे देशों को प्रायः विभिन्न प्रकार जैसे अविकसित, विकासशील, कम विकसित, उद्योगीकरण वाला पिछड़ा अथवा अथवा तृतीय विश्व के देशों के रूप में जाना जाता है। सामान्यतः प्रतिव्यक्ति आय के आँकड़ों पर आधारित सरकारी विनिमय दर भ्रामक होती है और इसकी बेहतर तस्वीर क्रयशक्ति तुल्यता के प्राक्कलनों के आधार पर अन्तरराष्ट्रीय तुलनात्मक आँकड़ों द्वारा प्राप्त की जा सकती है। दोनों स्थितियों में, विश्व जनसंख्या का अधिकांश प्रतिदिन क्रमशः एक अमेरिकी डालर और दो अमेरिकी डालर से कम आय पर जीवन निर्वाह करता है (देखें अन्त में सारणी-I व II)। अधिक आय वाले देश विश्व की सकल राष्ट्रीय आय का लगभग चार-पाँचवाँ भाग पैदा करते हैं, जबकि कम आय वाले देश विश्व की सकल राष्ट्रीय आय (GNI) के 4 प्रतिशत से कम पैदा करने की स्थिति में होते हैं और मध्यम आय वाले देशों का हिस्सा कुल आय का लगभग 17 प्रतिशत है। यह उल्लेखनीय है कि अधिक आय वाले देशों की जनसंख्या लगभग 6 अरब की विश्व जनसंख्या का 15 प्रतिशत है। कुल मिलाकर दो-पाँचवाँ भाग से अधिक मनुष्य कम आय वाले देशों में रहते हैं जबकि मध्यम आय वाले देश विश्व जनसंख्या के लगभग 45 प्रतिशत मनुष्यों को नागरिकता प्रदान करते हैं। समृद्ध देशों में गरीब, अपवंचित, विभेदीकृत और संतप्त व्यक्तियों की संख्या काफी अधिक है। इसी प्रकार अधिक गरीब देशों में धनी, समृद्ध और धनधान्य से पूर्ण व्यक्ति भी कहीं-कहीं मौजूद हैं। जबकि गरीब और धनी देशों के अमीरों के बीच जीवन के अनुभव, मूल्य, विचार और आर्थिक-सामाजिक का अच्छा तालमेल है, दोनों तरह के देशों में गरीबों के बीच प्रतिस्पर्धात्मक सम्बन्ध और अनुभूतियों का कोई खास प्रमाण नहीं है।

भारत में अनियंत्रित रूप से व्याप्त विषमताओं के बारे में सांख्यिकीय आँकड़े प्राधिकृत रूप से उपलब्ध नहीं हैं। तथापि, इन प्रचलित विषमताओं के बारे में कुछ विचार भारत के बारे में कुछ सुविख्यात तथ्यों से एकत्र किए जा सकते हैं। एक तथ्य यह है कि जनसंख्या के लगभग दो-तिहाई हिस्से की जीविका का एक मात्र स्रोत कृषि बनी हुई है, ऐसी स्थिति है जो अत्यधिक सुदृढ़ है परन्तु कृषि पर निर्भर रहने वाले लोगों की निरपेक्ष संख्या अब उस संख्या का तीन गुना है जो स्वतंत्रता के समय कृषि पर निर्भर थी। परन्तु

आधी शताब्दी से अधिक की इस अवधि में, सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का शेयर आज़ादी के समय कुल के तीन-चौथाई से घटकर इस समय एक चौथाई से भी कम रह गया है। इसी के साथ प्रति व्यक्ति निबल कृषि क्षेत्र सिकुड़कर 0.13 हेक्टेयर हो गया है जो 1947 वाले क्षेत्र का मुश्किल से एक तिहाई है। उस समय भूदान आन्दोलन और भूमि के पुनर्वितरण के विधिक-प्रशासनिक प्रयास के बावजूद वस्तुतः भूमि धारण इस सीमा तक बढ़ गया है कि व्यापक रूप से यह कहा जा सकता है कि भूमि धारकों का उत्कृष्ट 20 प्रतिशत मोटेतौर पर उपजाऊ क्षेत्र के 80 प्रतिशत पर नियंत्रण बनाए हुए हैं। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि कुछ उत्पादकता अभिलाभों के बावजूद खेतिहरों की अधिकांश की तुलनात्मक स्थिति बदतर हो चुकी है। इनमें 80 प्रतिशत छोटे और सीमांतक किसान हैं जिनके पास भूमि के छोटे-छोटे निर्जीव प्लॉट हैं तथा अन्य पूरक संसाधनों तक उनकी पहुँच अपर्याप्त और सीमित है। उन भूमिहीन कृषि मजदूरों की स्थिति आय की दृष्टि से खराब है जिनका अधिकांश उन सामाजिक रूप से और आर्थिक रूप से बदतर तथा विभेदीकृत और प्रजातीय समुदायों से जुड़ा हुआ है जो भारत के अत्यधिक विभेदित और सामाजिक रूप से बिखरे हुए लोगों का निकृष्टतम रूप है। ऐसे लोग जो ग्रामीण आबादी के एक तिहाई से थोड़ा कम हैं, लाभप्रद और उत्पादक कार्य की अपर्याप्तता और अनिश्चित उपलब्धता से आय की असुरक्षा का शिकार होते हैं और सर्वाधिक अनिवार्य सामाजिक-आर्थिक मूलभूत सुविधाओं और सेवाओं से वंचित रहते हैं जैसे उनके सिरो के ऊपर सही सलामत छत, पेयजल, साक्षरता, स्वास्थ्य सुविधाएँ, चिकित्सा सुविधाओं तक पहुँच विद्युत और भोजन सुरक्षा का न होना। इसके प्रतिकूल, एक अल्पसंख्यक वर्ग जो अन्तरराष्ट्रीय स्तर के धन और विलासिताओं का मजा ले रहे हैं, आवश्यकता और सांख्यिकीय आँकड़ों से भलीभाँति परिचित हैं। किसी भी हालत में अत्यधिक भ्रामक धारणा के आधार पर भी सरकारी आँकड़ों के अनुसार गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या 2 करोड़ है तथा साक्षरता का स्तर उन उप-सहारा अफ्रीकी देशों से भी कम है जो विश्व के न्यूनतम विकसित देशों में गिने जाते हैं। उपरोक्त के दृष्टिगत, यह प्रश्न करना तर्कसंगत है कि समय, देश और विभिन्न सामाजिक-आर्थिक समूहों से परे आय की तुलना कितनी अर्थपूर्ण है?

---

### 6.3 दरिद्रता : आय का तुलनात्मक अध्ययन

---

प्राक्कलित आय के स्तर और विभेदन लोगों के अस्तित्व की सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों का पूरा परिचय नहीं देते। इसके बहुत से कारण हैं। एक कारण यह है कि आय बाज़ार केन्द्रस्थ क्रियाकलापों से जुड़ी होती है। परन्तु अनेक निर्णयात्मक और महत्वपूर्ण क्रियाकलाप जिनमें भौतिक पहलुओं से जुड़े हुए और समृद्धि, सामाजिक भूमिका और प्रतिष्ठा को प्रभावित करने वाले क्रियाकलाप शामिल हैं, बाज़ार से इतर क्रियाकलाप हैं और उनमें परिवार, समुदाय, राज्य, असैनिक समाज, संगठन आदि अन्तर्ग्रस्त होते हैं। इस बाज़ार से इतर क्रियाकलापों को आय के प्रवाह से कुछ लेना-देना नहीं होता। इस प्रकार, बाज़ार में हर कोई शामिल नहीं होता है, यह लोगों के गैर-कार्यात्मक अन्यायपूर्ण मानदण्ड के आधार पर विभेदन करता है और अधिकांश लोगों को अलग-अलग समयान्तराल के लिए अपने परिसर में कार्य अथवा लेनदेन में सहभागी नहीं बनाता है। बहुत से उद्देश्यपरक और व्यक्तिपरक घटक बाज़ार के तर्क और कार्यचालन के लिए सौहार्दपूर्ण नहीं है। बाज़ार ये कइयों द्वारा इस प्रकार आय का प्रवाह बनाने के लिए बाज़ार प्रक्रियाएँ कुछ लोगों को दूसरों की कीमत पर लाभ पहुँचाती हैं। उदाहरण के लिए उत्पादन की प्रक्रिया में भूमि, जल, जंगल आदि जैसे प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग कुछ लोगों को बिना किसी अथवा अपर्याप्त प्रतिपूर्ति के उनकी जीविका से अपवंचित कर देता है। भारत में बहुउद्देश्यीय सिंचाई और जल विद्युत

परियोजनाओं का मामला लीजिए। वे अक्सर ऐसे विशाल भूमिक्षेत्र को जलमग्न कर देते हैं जो जंगलों, विशेषकर पुरातन शैली के प्राकृतिक जंगलों से घिरा होता है। इन जलमग्न इलाकों के कारण हजारों जनजातियों, किसानों और अन्य गरीब लोगों का विस्थापन होता है जिससे उनकी केवल जीविका ही अस्त-व्यस्त नहीं होती परन्तु उनके रहन-सहन का पूरा ढर्रा ही बदल जाता है। जब कभी पुनर्वास प्रयास किए गए हैं, जो हमेशा नहीं होते, ये पूर्ण और युक्तियुक्त प्रतिपूर्ति से काफी कम होते हैं, उचित पुनर्वास और परियोजना से होने वाले लाभों में सहभागिता और अथवा किसी अन्य विकल्प का सवाल ही नहीं उठता। जबकि इन शरणार्थियों के इस प्रकार के विकास पर भारी खर्च होता है, परन्तु इसका लाभ लेने वाले मैदानी इलाके में रहने वाले वे लोग हैं जो सामान्यतः भारत का एक छोटा-सा संगठित सभ्रान्त लोगों और उनसे जुड़े हुए लोगों का समूह है। राष्ट्रीय आय के आँकड़े निश्चित रूप से इस प्रकार के असमानता प्रेरक 'विकास' से होने वाले भारी लाभ को दर्शाते हैं। यह लाभ उस छोटे वर्ग को उद्भूत होता है जो उन निर्धन लोगों को किसी प्रकार की प्रतिपूर्ति नहीं करते हैं जो राष्ट्रीय सकल उत्पाद के आँकड़ों में यथा प्रदर्शित इस प्रकार के विकास से यहाँ बदतर स्थिति में पहुँच जाते हैं। स्पष्टतः ये परियोजनाएँ सकल घरेलू उत्पाद और जनता के उन दुश्मनों की आय में वृद्धि करती हैं जो किसी भी राष्ट्रीय लेखाओं के आँकड़ों की पकड़ में नहीं आते। भारत ने गत पचास वर्षों में ऐसी दर्जनों परियोजनाएँ देखी हैं। इनसे उजड़े हुए लोग सामान्यतः निर्धनों की गिनती में आते हैं।

बाज़ार जनित आय पर उसकी गुप्त और गैर-मौद्रिक लागत को छिपाती है। बाज़ार अत्यधिक सीमित और संक्षिप्त दृष्टिकोण अपनाते हैं, बाज़ार का दृष्टिकोण बहुत ही संकीर्ण होता है। तदोपरान्त, बाज़ार प्रक्रियाओं में सहभागिता और इन प्रक्रियाओं से अलग होने की लागतें पूर्णरूपेण, सही और यथार्थ रूप से मूल्य और आय के आँकड़ों में शामिल नहीं होती। बाहरी अर्थव्यवस्थाओं और विषम अर्थव्यवस्थाओं के प्रभाव आय को अपूर्णसूचक बनाते हैं। कुल मिलाकर जंगलों के निरावरण, भूमि के अपक्षीणन, जलवायु के प्रदूषण द्वारा अधिरोपित इन भारी मूल्यों से कौन इंकार कर सकता है जिनसे विशुद्ध आधुनिक उद्योगीकरण को अपनाने वाला भारत जैसा देश भी लम्बी अवधि से त्रस्त है तथापि इसके सकल घरेलू उत्पाद में 20वीं शताब्दी के प्रथम पचास वर्षों से वृद्धि होना शुरू हुई है। बहुत से गैर-आर्थिक पहलू भी व्यष्टियों, समूहों और समाजों के लिए कम महत्वपूर्ण नहीं हैं क्योंकि वे विकास के सारतत्व हैं परन्तु बाज़ार मूलक आयजनित क्रियाकलापों के दायरे में नहीं आते हैं। अन्य विश्वों में, बाज़ार मूलक आय अपूर्ण, आंशिक और भ्रामक सूचक वाली होती है तथा कुछ अर्थों में आम समाज की सम वृद्धि के प्रतिकूल हो सकती हैं।

तब, राष्ट्रीय आय के जोड़ और औसत राष्ट्र को एक इकाई के रूप में लेते हैं, यद्यपि यह आन्तरिक गतिशीलता और विभेदन के बिना आन्तरिक रूप से एकमात्र अविभेदित हस्ती (काले संदूक की तरह) है। भारत जैसे देशों में सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संसाधनों के ऊपर नियंत्रण, उन तक पहुँच और उनकी गुणवत्ता तथा प्रास्थिति और सत्ता के अर्थों में व्यापक आन्तरिक विभेदन होते हैं; उनके ऐतिहासिक अनुभव भी अनेक प्रकार की उथल-पुथल के द्योतक हैं। इन मतभेदों में भारत जैसे देश में उसके उपमहाद्वीपीय आकार के मदेनजर एक क्षेत्रीय आयाम भी जोड़ा जा सकता है। तब, चाहे विभिन्न राष्ट्र पूर्णरूपेण अपूर्व न भी हों, राष्ट्रों के बीच मतभेदों से काफी सीमा तक समानताएँ अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाती हैं। भारत के बारे में प्रायः कहा जाता है कि यह एक नितांत विविधताओं वाला देश है, ऐसा देश जिसमें स्थायी सामान्यीकरण वह है जो वैध हो। इसलिए राष्ट्रों, उनके स्तर, प्रतिमान, गतिशीलता और

आय के प्राथमिक आँकड़ों के आधार पर विकास के भविष्य की तुलना करना अत्यधिक भ्रामक हो सकता है। भारतीय राज्यों के बीच प्रति व्यक्ति राज्य घरेलू उत्पाद अन्तरराज्यीय तुलना के लिए ठीक रहेगा। राष्ट्रीय और राज्य की आय के इस प्रकार के आँकड़ों की प्रत्यक्ष परिशुद्धता बहाना मात्र है क्योंकि इसकी संगणना कई अवास्तविक परिकल्पनाओं, सूचना के अशुद्ध स्रोतों और शासन विशेषकर विशाल असंगठित क्षेत्र वाले गरीब देशों में अंगूठाछाप शासन पर आधारित होती है। भारत के मामले में विशेष रूप से यह एक सच्चाई है क्योंकि यहाँ 92 प्रतिशत से अधिक श्रमबल अपनी जीविका ऐसे असंगठित क्षेत्र में कार्य करके अर्जित करता है जिसका योगदान भारत के सकल घरेलू उत्पाद के 70 प्रतिशत से कम है।

आय के प्रवाह उत्पादन (नियमित रूप से अथवा तदर्थ आधार पर) द्वारा पैदा किए जा सकते हैं अथवा हस्ताक्षर के द्वारा विनियमितता के अधिप्रमाणित उपाय वाले विभिन्न तरीकों से भी उलपब्ध कराए जा सकते हैं। परन्तु इस प्रक्रिया में आय का वितरण करने वालों का वर्चस्व बना रहता है तथा उसे प्राप्त करने वाले उनके नियंत्राधीन और अधीनस्थ रहते हैं। इसमें शक्तिहीनता और पराधीनता के असमान रिश्ते में आय अंतरण प्रापक अन्तर्ग्रस्त होते हैं जिससे वे मजबूरन स्पष्टतौर पर हीनभावना के शिकार होते हैं। ऐसे सत्ता सम्बन्ध किसी भी समाज और राष्ट्रों के बीच भी निर्णायक होते हैं। ग्रामीण निर्धन अपने अभाव के स्तर में कोई सुधार क्यों नहीं कर पाए हैं यद्यपि गत पाँच दशकों में लाखों-करोड़ों रुपये प्रत्यक्ष तौर पर उनके कल्याण और विकास के लिए खर्च किए जा चुके हैं, का एक संभावित कारण यह है कि ये सभी ऊपर-नीचे के कार्यक्रम पैत्रिक पक्ष से जुड़े हुए हैं और हितकारी तथा हिताधिकारी के बीच एक तीव्र द्विविभाजन करते हैं। एक अन्य उदाहरण लें। 'सहायता' प्राप्त करने वाले देशों को 'दाता' देशों से नियमित, निरन्तर, संस्थागत, और औपचारिक आधार पर अपनी योजनाओं और नीतियों का अनुमोदन कराना पड़ता है। ऐसे राष्ट्र प्रत्यक्षतः छूट प्राप्त कर्जों को प्राप्त करने के लिए आसान विकल्प, प्रौद्योगिकी तक पहुँच आदि के लिए राष्ट्रीय संप्रभुता और हितों से समझौता करते हैं। परन्तु इस प्रक्रिया में विशेषतः उनके मुख्य राष्ट्रीय हितों का विनिमय होता है जो "दाता" की अनुमोदित योजनाओं, कार्यक्रमों और नीतियों में सहभागिता की स्थिति में नहीं होते हैं। वर्ष दर वर्ष भारत की उस तिरस्कृत स्थिति पर विचार कीजिए जब भारत शासकीय विकास सहायता के रूप में कुछ विकास सहायता जो भारत के विकास खर्च का एक अल्पांश मात्र होती है, मुहैया कराने के लिए अपनी वचनबद्धता के बदले में तथाकथित दाता देशों का अनुमोदन प्राप्त करने की दृष्टि से भारत सहायता क्लब के रूप में अपने उच्च स्तरीय कर्मचारियों को भेजता है। अपेक्षा कम ब्याज वाले इस प्रकार के कर्जें प्रायः ऐसी परियोजनाओं के लिए प्राप्त किए गए थे जिनसे किसी विदेशी मुद्रा की निकासी नहीं हुई और भारत के दीर्घकालिक भुगतान घाटे को पूरा करने हेतु लिये गए थे। मुद्दा यह है कि यद्यपि कुछ सीमा तक लाभप्रद अन्तरराष्ट्रीय आय की तुलनाएँ चाहे वह विद्यमान में हों अथवा लम्बी ऐतिहासिक अवधियों से जुड़ी हों, विकास की राजनीतिक अर्थव्यवस्था के आवश्यक प्रश्नों और समस्याओं को परिभाषित करने के लिए बिल्कुल अपर्याप्त है।

तथापि, यह सार्वभौमिक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विभाजन का मुख्य लक्षण है जो विकास की राजनीतिक अर्थव्यवस्था को जटिल/संदिग्ध बना देता है। वस्तुतः एक देश के आन्तरिक मतभेद और असमानताएँ चिरस्थायी और उत्तरोत्तर बढ़ती हुई अन्तरराष्ट्रीय असमानताएँ चिरस्थायी और उत्तरोत्तर बढ़ती हुई अन्तरराष्ट्रीय असमानताओं से सम्बन्धित हैं और विकास प्रबन्धन का एक प्रमुख घटक हैं। तथापि, इन मुद्दों पर उचित रूप से चर्चा करने के लिए हमें विकास की चिरस्थायी लोकप्रियता

और आय से जुड़े हुए मानदण्डों की सरकारी स्तर पर एकमात्र मान्यता की वैधता पर विचार करना पड़ेगा। निस्संदेह यह सच्चाई है कि वस्तुओं और सेवाओं की नियमित आपूर्ति के लिए आय का प्रवाह अथवा उस तक पहुँच आवश्यक है और उसे अनदेखा नहीं किया जा सकता तथा सुनिश्चित करना पड़ता है। मूल मुद्दा है : क्या इस एकमात्र पूर्णतः महत्वपूर्ण विकास घटक को, प्रत्येक अतिरिक्त वस्तु के लिए, एक अनिवार्य पूर्वपिक्खा बनाया जा सकता है? इस प्रकार के अतिशयोक्तिपूर्ण एकपक्षीय दृष्टिकोण के लिए उत्तरदायी आवश्यक घटक अर्थशास्त्र द्वारा लोकप्रियता के रूप में विकास के मुद्दों का यह एकाधिकरण प्रतीत होता है जो तकनीकी रूप से कठोर एवं प्रभावी उपशिष्य हैं जिसे विकास के अर्थशास्त्र के रूप में जाना जाता था विशेष रूप से जैसा यह समृद्ध देशों में विकसित हुआ। इस शिष्य को धनी देशों के प्रतिष्ठान तथा वस्तुतः उनके वर्चस्व वाले संयुक्त राष्ट्र संगठन द्वारा पर्याप्त रूप से आकार दिया गया और इसे विकसित किया गया जिनके लिए भारत सहित विश्व के अनेक हिस्सों से उन स्वतंत्र अकादमियों द्वारा उचित योगदान प्राप्त हुआ जिसके धनी देशों के आदर्शवादी, सांस्कृतिक और प्रौद्योगिकीय उपकरण से थोड़ा औपचारिक सम्बन्ध थे। यह ऐसा अभिगम है जो उनको स्थायित्व प्रदान करता है जो संसाधनों और संस्थाओं के ऊपर अपने वर्चस्व के कारण आय में वृद्धि की प्रक्रिया पर नियंत्रण रखते हैं और जनित्र आय के एक बेहतर हिस्से को अपनी मुट्ठी में कर लेते हैं। इस प्रकार विद्यमान सत्ता केन्द्र और अर्थव्यवस्था के नियंत्रक आय में वृद्धि को विकास के सार के रूप में प्रस्तुत करते हैं। परिणामस्वरूप, विकास पर प्रत्यक्षतः तकनीकी आर्थिक परिप्रेक्ष्य में प्रमात्रित पहलुओं और वृद्ध आर्थिक परिवर्तनों जैसे बचत, निवेश, सकल घरेलू उत्पाद, बाहरी संतुलन, सामान्य मूल्य स्तर, संघटकों की गतिशीलता आदि का विकास से जुड़े अकादमिक वार्त्तालाप, व्यावहारिक नीति निर्णयन और अन्तरराष्ट्रीय विकास क्रियाकलाप तथा 'सहयोग' पर वर्चस्व बना रहा।

प्राकृतिक तौर पर, यह अभ्यास मुख्यधारा वाले नव-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र की एक प्रबल छाप पेश करता है जिसके स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है, यह न्यायनिर्णयन, बढ़ती हुई शक्ति को स्थायित्व प्रदान करने और विद्यमान युक्तिसंगत वास्तविकता से अधिक सम्बद्ध है। अब तक सीमांतक और बहिष्कृत लोगों की भलाई के लिए यह अपना रूप बदलता रहता है। इस प्रकार यह राष्ट्रीय आय की वृद्धि से जुड़ा हुआ है तथा पहले धनी देशों द्वारा अपनाए गए प्रतिदर्शों को अपना रहा है। यह आधारभूत रूप से धनी, पहले उद्योगीकृत देशों में आधारित बड़े निगमों के नियंत्रणाधीन पूँजी संचयन की प्रक्रिया को आगे बढ़ा रहा है। उद्योगीकरण, प्रौद्योगिकीय नवीनताओं और पूँजी संचयन की प्रक्रियाओं ने धनी देशों (उत्तर) से एक लघु अल्पसंख्यक समुदाय की शक्ति, समृद्धि और सार्वजनिक वर्चस्व में योगदान दिया जिसमें गरीबों के उत्कृष्ट शासकीय और प्रभावशाली वर्ग, गैर औद्योगिकीकृत (आधुनिकीकरण से जुड़े हुए मुद्दे पर) देशों द्वारा कुछ छोटी भूमिका (भूमंडलीय संदर्भ में) निभाई गई। इन प्रक्रियाओं के परिणाम प्रति व्यक्ति आय (राष्ट्रीय आय का औसत) से प्रकट हुए जिनका विकास और कल्याण के लिए ऐसे आवश्यक स्वीकारात्मक रिश्ते से कुछ लेना-देना नहीं है जो प्रत्यक्षतः पूँजी संचयन, तकनीकी प्रगति और बढ़ती हुई उत्पादन प्रक्रियाओं से नहीं जुड़ा हुआ है।

इस प्रकार, सकल घरेलू उत्पाद अपने विभिन्न स्वरूपों में मात्र एक अत्यधिक सामान्य प्रमात्रित सूचक नहीं है अपितु यह अत्यधिक अपूर्ण, अयथार्थ, अधूरा, दोषपूर्ण और भ्रामक सूचक भी है। विविध आयामी असमानताओं की ऐतिहासिक वैधता के होते हुए यह मूल रूप से विशाल अन्तरराष्ट्रीय पूँजी वाले धनी, उद्योगीकृत देशों (जानबूझकर अथवा अनजाने में विकसित अथवा प्रगतिशील देशों के रूप में वर्णित तथा



इस प्रयोग के आधार पर इस शब्द को कईयों द्वारा विषम मानसिक स्थिति के तहत अपनाया गया है) के हितों का मात्र दिखावा करता है। यह पूँजी संचयन, उद्योगीकरण की उन प्रक्रियाओं के कारण है जो ऐसे सामाजिक रिश्तों, अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों, जीवन शैली, प्रौद्योगिकी आधारित सांस्कृतिक उत्पादों और मुख्यतः उनसे व्युत्पन्न अथवा जुड़े हुए प्रतीकों के परिणामस्वरूप हैं जो पुनः उन लोगों के शक्ति और हितवर्द्धक हैं जो पूँजी संचयन और उद्योगीकरण की उन प्रक्रियाओं पर नियंत्रण बनाए हुए हैं। इन प्रक्रियाओं में उन देशों की संख्या से काफी बड़ी संख्या में ऐसे देश शामिल नहीं होते और उन्हें हासिए पर कर दिया जाता है जिन्हें शामिल किया जाता है और जो शक्ति-सम्पन्न हैं तथा सौदेबाजी के समय, इस प्रकार बहिष्कृत देश अल्पसंख्यक देशों के अधीनस्थ हो जाते हैं। आधुनिक उद्योगीकरण का भारतीय अनुभव उपनिवेश काल से पहले और स्वतंत्रता के बाद की अवधि दोनों में स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि एकल घरेलू उत्पाद और सम्बल दोनों में उद्योग का अंश युगों पुरानी कृषि के कारण नहीं अपितु हाल ही में तेजी से विस्तार कर रहे सेवा क्षेत्र के बावजूद भी बहुत कम बना हुआ है। वास्तव में, संगठित औद्योगिक क्षेत्र में जिसमें भारत का श्रमबल 40 करोड़ से अधिक है, 2001 में बमुश्किल 74.3 लाख था जो सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र दोनों में कुल श्रमबल के 2 प्रतिशत से कम है।

इस प्रकार पता चलता है कि ताकतवर बल विकास और आर्थिक वृद्धि (अर्थात् सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि) जो आर्थिक विकास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य तथा सार व परिभाषा है, को सूचक के रूप में राष्ट्रीय आय के स्थायीकरण के समर्थन में क्यों अपना विस्तार करते हैं। इसलिए नहीं कि स्पष्टतः और पूर्णतः अनावरित कमजोरियाँ, अक्षमताएँ और विकृत विश्व की तस्वीर आर्थिक विकास के साथ केवल पर्यायवाची के तौर पर वास्तविक आर्थिक वृद्धि से नहीं जुड़ी हुई अपितु इसके कारण विकास को स्वयं अनेक विकास प्रेमियों द्वारा मान्यता भी नहीं दी गई है। परन्तु संशोधन के तौर पर, उन्होंने सकल घरेलू उत्पाद/सकल राष्ट्रीय उत्पाद के ब्रैंड बैगन में कुछ अतिरिक्त सूचक जोड़े हैं, वृद्धि सूचक का अर्थ सीमित किया है यहाँ तक अनेक वैकल्पिक प्रमात्रात्मक सूचकों (जैसे जीवन की गुणवत्ता, मानव विकास सूचकांक, मूलभूत अथवा न्यूनतम आवश्यकताएँ, विकास के सामाजिक सूचक, न्यायपूर्ण वृद्धि, व्यापक विकास फ्रेमवर्क आदि) को विकसित भी करते हैं, परन्तु विभिन्न प्रत्यक्ष और/अथवा घुमावदार तरीकों से सकल घरेलू उत्पाद अथवा सकल राष्ट्रीय उत्पाद आधारित सूचकों अथवा सिद्धांतों से चिपके रहते हैं अथवा उनकी विशिष्टता बनाए रखते हैं। यदि सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि की केन्द्रीयता समाप्त कर दी जाती और वैकल्पिक परिभाषाओं, उत्पादों सूचकों आदि जो इससे सम्बन्धित हैं और विद्यमान में अलाभकृत, विभेदित और अभावग्रस्त लोगों की परिस्थितियों, हितों, उमंगों और प्रतिष्ठानों को दर्शाते हैं, से विस्थापित किया जाता तो उद्योगीकृत और निर्धन दोनों प्रकार के देशों के सर्वोत्कृष्ट स्थिति वाले लोग अपनी सत्ता और प्रभुत्व को खो चुके होते। इस प्रकार की आत्महत्या की युक्तिसंगत उम्मीद किसी से भी नहीं की जा सकती। अन्य सट्टेबाज को अपने हितों और मूल्यों के लिए स्वयमेव जोड़-तोड़ करना पड़ता है और उन तरीकों से विकास को परिभाषित करना पड़ता है जिनसे जनता वास्तव में प्रभावित होती है। केवल ऐसी स्थिति में ही जनता का, जनता के लिए तथा जनता द्वारा विकास होगा।

## **6.4 सार्वभौमिक सामाजिक वस्तुस्थिति : गलत विकास की अनिवार्यताएँ**

आधी शताब्दी से अधिक समय तक अनेक उपाय और कठोर 'राष्ट्रीय' और भूमंडलीय प्रयासों (वास्तव में, वंशानुगत, अधिकांशतः उपनिवेशी स्थिरता और पश्चगतिक पैतृक सम्पत्ति के संदर्भ में) के द्वारा एक

ही दिशा में, सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि के स्वयमेव बाधित सजग अनुसरण का प्रभाव देखने के लिए सबसे पहले हमें सकल घरेलू उत्पाद से अन्यथा स्थिति में विश्व का विशेष रूप से अधिक निर्धन हिस्सों में सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के कुछ चुनिन्दा पहलुओं पर ध्यान देना चाहिए। चूँकि समय (अविनिर्दिष्ट) गुजरने के साथ-साथ गरीबों को लाभ दिलाने, निगमित करने और धीरे-धीरे शक्ति सम्पन्न बनाने के लिए अधोपतन प्रक्रियाओं की परिकल्पना के अनुसार सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि प्रत्याशित थी, सामान्यतः लोगों के जीवन स्तर में भी शनैः शनैः सुधार की उम्मीद थी। पिछड़े हुए और प्रगतिशील सम्बन्धों के माध्यम से आच्छादित प्रभावों के मौलिक श्रम और पण्य बाज़ार प्रक्रियाओं के द्वारा यह माना गया था कि अधोपतन प्रक्रिया के प्रचालन से देशों और महाद्वीपों में गरीबों पर दुराचार और शोचनीय जीवन स्तर पर काबू पाने में काफी सहायता नहीं मिल पाएगी। संभावित दृष्टिकोण इस कल्पना पर आधारित है कि वृद्धि और उसके फैलाव के परिणामस्वरूप ग्रामीण और असंगठित क्षेत्र से जन समुदाय को धीरे-धीरे शामिल करने पर गरीबी असमानता दोनों में कमी आएगी। परन्तु एक प्रात्यक्षिक अर्थशास्त्री ने दर्शाया है, “विकास गरीबी और असमानता को कम कर सकता है, विकास गरीबी को कम कर सकता है और असमानता को बढ़ा सकता है, विकास गरीबी और असमानता दोनों में वृद्धि कर सकता है।” यह सब कुछ उत्पादन के संघटक, उत्पादनों में संघटकों के अनुपात, सापेक्ष मूल्य, उत्पादन की अवस्थिति, राज्य की नीतियों आदि पर निर्भर करता है। यह बात रोज़गार पैदा करने पर भी लागू होगी। इसीलिए, मूलतः वृद्धि और बाज़ार आधारित अभिगम के कुछ वाक्पटु समर्थकों द्वारा अनुबोध के रूप में यह निर्धारित किया गया था कि अनेक ऐसे लोग होंगे जो इस जमाने की वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय क्रांति द्वारा संभव जीवन स्तर का लाभ नहीं उठा सकते हैं अथवा उस स्तर को प्राप्त करने की स्थिति में नहीं हो सकते (अन्य बातों के साथ यह तर्क दिया गया था कि तेजी से आगे बढ़ने की उनकी प्रवृत्ति के कारण ऐसा संभव हो सकता है और बड़ी संख्या में गैर-बनावटी, अदूरदर्शी, गुप्त और/अथवा सांसारिक दृष्टिकोणों और मूल्यों में वृद्धि की जा सकती है और उन्हें उत्प्रेरित किया जा सकता है। उन्होंने बहुत से तैयार किए गए कार्यक्रमों और नीतियों के बारे में सोचा अर्थात् राज्य प्रवर्तित क्रियाकलाप, आय, धन सामाजिक प्रतिष्ठा विशेष रूप से सामाजिक सेवाएँ मुहैया कराना जिसमें उन लोगों के लिए सामाजिक सुरक्षा के कुछ उपाय भी हैं जो या तो बाज़ार व्यवस्था के किनारे पर रहते हैं अथवा बाज़ार से बाहर रहने के लिए मजबूर कर दिए जाते हैं। वास्तव में, 20वीं शताब्दी के अन्तिम पचास वर्ष के इतिहास से विशेष रूप से यह खोज करने के बाद कि 1950 और 1960 के दशकों के दौरान विकास के स्वर्णिम युग में अत्यधिक भारी संख्या में लोग निरपेक्ष गरीबी अव-मानवीय परिस्थितियों में रहते थे, राज्य निदेशित गरीबी-उन्मूलन कार्यक्रमों के विशाल पैमाने पर प्रयासों के प्रमाण मिलते हैं। यह सुविख्यात मैकनामरा महबूब उल हक थीसिस की उत्पत्ति है जिससे कई अन्य उत्साही पष्ठांककों और अनुयायियों का पता चला। प्रोत्साहन की प्रक्रिया के अनुसरण और अनेक कार्यकुशलताओं, नीति अन्तराक्षेपण प्रत्यक्ष निवेश आदि के द्वारा विकास में तेजी लाकर अधोपतन और उत्कर्षण प्रक्रियाओं से निरपेक्ष तौर पर उत्पादन हुआ तथा उपनिवेशी अवधि के परिणामों की तुलना में समुचित प्रभावकारी परिणाम प्राप्त हुए। परन्तु अब कभी-कभी यह प्रश्न पूछा जाता है कि विकास होने से किसको कितनी लागत आई और कितना लाभ मिला? इसके अतिरिक्त लम्बे उपनिवेशी काल के दौरान देखी गई वास्तविक स्थिरता की तुलना में इन अर्थव्यवस्था के सकल घरेलू उत्पाद में काफी अधिक वृद्धि होने के बाद गरीबों, अभावग्रस्तों और विभेदित लोगों की निरपेक्ष संख्या के बारे में भी प्रश्न पूछा जाता है। तथापि, परिवर्तन के तथ्य जो सार्वभौमिक तौर पर शताब्दी के अन्तिम पचास वर्षों में स्पष्टतः संख्या में



वृद्धि के लिए बिगड़ती हुई सामाजिक, भौतिक, नैतिक और सांस्कृतिक विद्यमान परिस्थितियों के साथ-साथ आय में बढ़ते हुए विघटन को भी प्रकट करते हैं। पूर्व एशियाई अनुभव से जुड़ी हुई नारेबाजी को छोड़कर कोई भी गंभीरतापूर्वक गरीबी, बेरोज़गारी, असमानताओं, पारिस्थितिक असंतुलनों और जनसामान्य के शक्तिहीनता (और गरीब देशों की सीमारेखा) को हटाने के सम्बन्ध में अर्थपूर्ण अभिलाषा का दावा नहीं कर सकता है।

अनुभूतिक्रम सामाजिक वैज्ञानिकों द्वारा कई अध्ययन और अनेक सरकारी दस्तावेज विशेषतः योजना आयोग के दस्तावेज इस तथ्य को मानते हैं कि पूर्ववर्ती विश्लेषण भारत के लिए पूर्णरूपेण सही हैं। दसवीं पंचवर्षीय योजना में स्पष्टतः कहा गया है, “विकास के अनेक पहलू हैं जहाँ प्रगति स्पष्ट तौर पर निराशाजनक रही है। 1990 के दशक में विकास से अपेक्षा के मुकाबले कम रोज़गार उपलब्ध हुए। बाल मृतक दर कई वर्षों तक प्रति 1000 लगभग 70 बच्चों पर स्थिर रही है। ग्रामीण परिवारों के 60 प्रतिशत तथा शहरी परिवारों के 20 प्रतिशत घरों में विद्युत व्यवस्था नहीं है। मात्र 60 प्रतिशत शहरी परिवारों में उनके घरों में पीने का पानी उपलब्ध है जबकि उनमें से काफी कुछ के शौचालय घर से बाहर हैं। इस सम्बन्ध में ग्रामीण क्षेत्रों की स्थिति काफी बदतर है। भूमि और जंगल के अधःपतन और भूमि जल के अधिशोषण से ग्रामीण परिवारों की स्थायित्वता और खाद्य उत्पादन को गंभीर खतरा पैदा हो रहा है शहरों में प्रदूषण वृद्धि पर है।” (पृष्ठ 2)। अधिकांश भारतीयों के लिए बिगड़ते हुए सामाजिक अस्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने वाले विश्वस्त स्रोतों का कोई भी हवाला दे सकता है। सरकारी तौर पर परिभाषित गरीबी रेखा अर्थात् प्रतिदिन न्यूनतम अनिवार्य कैलरी प्राप्त करने में अक्षम लोग, से नीचे रहने वाले 6 करोड़ व्यक्तियों के संरक्षित आँकड़े 1951 में भारत की जनसंख्या से मात्र 10 करोड़ कम है। जब प्रतिव्यक्ति भोजन की उपलब्धता आज के मुकाबले कहीं अधिक थी। 4.5 करोड़ व्यक्ति रोज़गार के अवसर तलाश कर रहे व्यक्तियों के रूप में पंजीकृत हैं जबकि बेरोज़गारी के सरकारी आँकड़े श्रमबल का 8 प्रतिशत हैं।

समान परिस्थितियाँ अफ्रीका, एशिया और लैटिन अमेरिका के अधिकांश हिस्से में है जहाँ विश्व की अधिकतर जनसंख्या रहती है और यह भी याद रखा जाना चाहिए कि प्रत्येक तथाकथित प्रथम विश्व देश के बीच में एक तृतीय विश्व है। आज भी गरीब देशों में जीवन की प्रत्याशा धनी देशों के मुकाबले 10 वर्ष कम है। सबसे न शंस तथ्य यह है कि धनी देशों की तुलना में गरीब देशों में प्रतिवर्ष बचपन में जीवित बच्चों में से मरने वालों की संख्या प्रति 1000 बच्चों में 13 गुना अधिक है। (ये सभी तथ्य विश्व विकास प्रतिवेदनों से हैं)। निर्धन देश अत्यधिक असमान और विकृत रूप से आर्बटित स्वास्थ्य सेवाओं पर जीवनयापन करते हैं जो अधिकतर विगत उपनिवेशी शक्तिधारकों में से काफी कम धनी लोगों के लिए कई गुना एकल घरेलू उत्पाद के ठीक दुगने 9.7 प्रतिशत के मुकाबले उनके अपेक्षाकृत कम सकल घरेलू उत्पाद का नगण्य 4.5 प्रतिशत हैं। इसी प्रकार उत्तर के मुकाबले निर्धन देशों में निरपेक्ष और सापेक्ष दोनों तरह से शिक्षा पर व्यय का स्तर कम देखा गया है। गरीब देशों में व्यापक पैमाने पर प्रतीकात्मक, अनुकरणमूलक और गैर कार्यात्मक शिक्षा, शिक्षा के निम्नस्तरो तथा निम्न और अनुप्रयुक्त निपुणता में दिखाई देती है साथ ही साथ परम्परागत निपुणता में जंग लग जाती है अथवा/और वह गायब हो जाती है। विशेष आह्वान के तहत प्राप्त किए गए साक्षरता स्तर कितने बनावटी है यह इस तथ्य से ही पता चलता है कि अधिकांश लोग जिन्हें साक्षर घोषित किया जाता है, बहुत कम समय में पुनः निरक्षर हो जाते हैं। आय और अन्य “सामाजिक” सूचकांकों की तुलना के आधार पर भी विश्व विकास प्रतिवेदन (2001)

में कहा गया है, “भले ही हम सार्वभौमिक गरीबी को हटाने का आधा लक्ष्य प्राप्त कर लेते हों, अत्यधिक गरीबी में जीवन बसर करने वालों की संख्या मात्र एक तिहाई होगी। चीन और जापान में अधिकतम निवेश होगा, परन्तु उप-सहारा अफ्रीका में यह संख्या बढ़ेगी। यूरोप और मध्य एशिया जहाँ संक्रामक अवधि में अत्यधिक गरीबों की संख्या में वृद्धि हुई थी, 1990 वाले गरीबी के स्तर को पुनः प्राप्त कर लेंगे। 2015 में सर्वाधिक आशावादी परिकल्पना के बाद भी 2.3 अरब लोगों के प्रतिदिन 2 अमेरिकी डालर अथवा इससे कम पर जीविका चलाने की संभावना है जो अनेक मध्य आय वाले देशों में गरीबी की द्योतक है।” स्पष्टतः विद्यमान वास्तविकता और संभाव्य भविष्य दोनों से प्रचलित ‘विकास’ अथवा उसके अधिक की यौक्तिकता के बारे में गंभीर भ्रामक स्थितियाँ जन्म लेंगी। यह आंशिक, सीमित, महँगे अथवा उत्कृष्ट अभिलाभों की प्राप्ति का अवमूल्यांकन नहीं है। मुद्दा यह है कि बेहतर विकल्पों की खोज की जानी चाहिए और उस पर कार्रवाई जारी रखनी चाहिए जिससे अधिकांश मानवता के हितों के सादृश्य गलत प्रस्तुतीकरण अर्थात् गलत विकास से बचा जा सके।

## 6.5 विकास : राजनीतिक अर्थव्यवस्था की कार्यसूची

इस प्रकार उन वृद्धि एवं गरीबी निवारण नीतियों की अक्षमता के बारे में स्पष्ट मान्यता है जो वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय क्रान्ति (STR) द्वारा मुक्त सक्षमता, संसाधन (भौतिक, वित्तीय, तकनीकी, मानवीय, संगठनात्मक) उपलब्धता तथा विचार और आदर्शवादिता के लगभग सभी प्रमुख विद्यालयों द्वारा प्रत्यक्षतः समर्थित मूलभूत मानवीय मूल्य-निर्माण को प्राप्त करने के लिए बनाई जाती है। विकास सिद्धांतों के सामने अब मूलभूत प्रश्न यह है कि विभिन्न द्राक्षा संचयनों की औद्योगिक क्रान्ति तथा आधी शताब्दी से अधिक समय के लिए उच्चस्तरीय गतिशील विकास की दो शताब्दियों से अधिक समय के बावजूद उचित रूप से सीमित स्वीकारात्मक तथा परिव्याप्त विकास विरोधी परिणाम प्राप्त हुए हैं। तथापि, सीमित स्वीकारात्मक अभिलाभ कुछ चुनिन्दा लोगों तक सीमित हैं। इसे भी जीवन के नैतिक, सामाजिक, राजनीतिक, आस्तिक, अनास्तिक और सामुदायिक पहलुओं के संदर्भ में ‘हिताधिकारियों’ के लिए भी अपरिचलनीय आर्थिक और गैर आर्थिक लागत पर प्राप्त किया गया है। फिर भी, व्यापक, बहुमुखी अभाव, अपमान और अमानवीकरण इस विशाल जन समुदाय का भाग्य बन चुके हैं जो आधुनिकता और उद्योगीकरण की मुसीबतों को वहन करने के लिए बनाए गए थे। इस प्रकार, संतुलन के तौर पर विगत पाँच शताब्दियों की सार्वभौमिक वृद्धि और उद्योगीकरण को गलत अथवा विकृत विकास के रूप में मानना अतिशयोक्ति नहीं हो सकता। नियामक, पूर्णतावादी, सामाजिक प्रक्रिया और परिणाम के रूप में और इसकी अनिवार्य तार्किक, व्यापक, मानवीय, शक्तिमूलक, सतत तथा न्याय और स्वतंत्रता पर आधारित परिभाषा से विकास, विकास की राजनीतिक अर्थव्यवस्था (PED) अथवा विकास अध्ययनों के लिए चिन्तन का विषय है। विकास की समस्या की उपरोक्त पहचान से यह स्पष्ट है कि PED की सोच परम्परागत अथवा मुख्य प्रवाह के विकास सिद्धांतों से भिन्न होगी। निश्चित तौर पर, मुख्य प्रवाह के सिद्धांतों के कई घटक और अन्तर्विचार PED के लिए परन्तु अपनी सजनात्मकता, चुनिन्दा अनुकूलन और पुनर्व्याख्या के माध्यम से काफी सहायक सिद्ध होंगे। सैद्धांतिक असमानताओं और वैकासिक युगान्तरण से व्युत्पन्न विकास नीतियों की विफलता के परिणामस्वरूप कई संशोधन, पुनर्व्याख्याओं और विकल्पों का प्रस्ताव किया गया है। रोज़गार, मूलभूत आवश्यकताएँ, विकास के साथ पुनर्वितरण, क्षमता अभिगम आदि सकल घरेलू उत्पाद अभिगम की स्थानापन्न अथवा संशोधन के रूप में उभरकर सामने

आए। तथापि, इनमें से एक भी अभिगम ने विकास विवाद की मूलभूत समस्याओं की पहचान नहीं की है। फ्रांसिस स्टीवर्ड और सेवराइन डेन्यूलिन (2002, 65) से प्राप्त सारणी III (जो अन्त में दी गई हैं) इन विकल्पों का एक संक्षिप्त विहंगावलोकन प्रस्तुत करती हैं।

सामान्यतः, विकास सिद्धांत उनको सम्बोधित हैं जो विकास का संगठन करने/ उसकी गति बढ़ाने में हस्तक्षेप कर सकते हैं अथवा जिन्हें हस्तक्षेप करना चाहिए। इसका तात्पर्य है राष्ट्रीय और उपराष्ट्रीय सरकारों, बाज़ार इकाइयों, राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय औपचारिक रूप से संगठित समूहों आमतौर पर जिन्हें गैर सरकारी संगठनों (NGOs) के नाम से जाना जाता है परन्तु बेहतर स्थिति में उन्हें सिविल सोसाइटी संस्थाओं के रूप में मानते हैं, से प्रतिक्रिया और विकास सिद्धांतों को प्रयोग में लाने अथवा सड़क बनाने की उम्मीद की गई थी। कुल मिलाकर, राज्य और बाज़ार संस्थाएँ सिद्धांत, विवाद और नीति परामर्श तथा विकास सम्बन्धी हस्तक्षेप का मुख्य केन्द्र रही हैं। यद्यपि राज्य सकेन्द्रता की कई सीमाएँ हैं (जैसे नकारना, तिरस्कार करना, परतंत्रता को प्रोत्साहन देने वाले व्यष्टि की पहल को प्रतिबंधित करना, अत्यधिक केन्द्रीकरण और संरक्षण को बढ़ावा देना, नौकरशाही को नज़रन्दाज करना, राष्ट्र-राज्य को विश्लेषण की इकाई के रूप में लेना, राज्य के स्वरूप और नीतियों आदि को अनदेखा करना आदि)। गरीब और अभावग्रस्त लोग राज्य में एक मुक्तिदाता, ऐसी हस्ती को देखना चाहते हैं जिसमें सामान्यतः लोग कम से कम संभवतया अपनी आवाज तथा दक्षता, भले ही कुछ अन्तराल पर हो, की आशा करते हैं। राज्य तथा बाज़ार दोनों के साथ मोहभंग से असैनिक समाज की संस्थाओं का ध्यान आकर्षित हुआ। इनमें, प्रायः गैर सरकारी संगठन (NGOs) हैं जिन्हें गलती से असैनिक समाज का पर्यायवाची मान लिया गया। PED अपेक्षा करती है कि राज्य और बाज़ार के अतिरिक्त इसे असैनिक समाज की सभी संस्थाओं को संशोधित करना चाहिए और केवल अनन्य रूप से राज्य अथवा बाज़ार अथवा NGOs पर केन्द्रित नहीं होना चाहिए। PED की संचयवाद अथवा व्यष्टियों की अवहेलना के साथ पहचान करना एक भ्रान्ति है। परन्तु हाँ, PED सैद्धान्तिक व्यष्टिवाद को अमान्य करती है जो वास्तविक विधिक व्यष्टियों के साथ स्वायत्त प्रचालन हस्तियों के रूप में व्यवहार करती है।

PED की हितसाधक समूह व्याप्ति जो अपनी बहुविधि असहमतियों के साथ समाजों का अध्ययन करती है बिल्कुल विविध और व्याप्त है। चूँकि विकास की प्रक्रियाएँ पूर्णतावादी हैं। PED की विषयवस्तु को मुख्य संस्थानों, संरचनाओं, उनकी अन्तर्क्रियाशील प्रक्रियाओं के साथ सामाजिक व्यष्टियों के अभिवर्तीय और मूल्य आदि खंड के सम्पूर्ण परिसर के साथ ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में व्यापक रूप से सम्बद्ध होना पड़ेगा जिससे उनकी क्षमताओं और व्यष्टियों का पता चल सके। वास्तव में, किसी दिए गए संदर्भ में, गौण और अपेक्षाकृत कम महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए एक पूर्णतावादी सम्पूर्ण अभिगम की भी आवश्यकता पड़ती है और मुख्य चर राशि के सापेक्ष में कार्य करना पड़ता है। इसे वैकल्पिक प्रतिदर्शों, प्रक्रियाओं और विकास पथों के ऐतिहासिक अनुभवों से इसकी रूपरेखा तैयार करनी पड़ती है जिससे विद्यमान परिस्थिति और विकास के चरण को समझाने, मूल चर राशियों को अलग करने, सुविधाजनक और बाधक घटकों के साथ अन्तर्क्रिया की उसकी स्थिति को समझने में सहायता मिल सके। स्पष्टतः, इसमें से कोई भी आवश्यक लक्ष्य और प्रयोजन को उस समय तक प्राप्त नहीं करेगा जब तक वह विकास प्रक्रियाओं में एक समेकित तरीके से प्रमुख खिलाड़ियों और उनके मूल्यों और हितों की पहचान करने में सक्षम नहीं हो। ये प्रक्रियाएँ ऐतिहासिक, संघटनात्मक हैं और विभिन्न पहलुओं जैसे आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और पारिस्थितिक को समेकित कर रही है और वास्तव में बाहर तथा राष्ट्रीय सीमाओं से

प्रभावों के अधीनस्थ हैं। उनके नियामक नीति विषयक पहलू को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। संस्थाओं का फैलाव, सूक्ष्म से मध्य, विशाल से सार्वभौमिक स्तरों तक, ऐतिहासिक रूप से वंशानुक्रम में प्राप्त तथा नई-नई सृजित संस्थाओं तक था जो अपनी सम्पूर्ण विविधता और सामान्यता के साथ, विकास के सिद्धान्तवादियों, विश्लेषकों तथा प्रेक्टिसनरों के सामने कठिन चुनौती के लिए ज़रा-सा भी अंशदान नहीं करते हैं। कई स्रोतों तथा कई देशों के विगत कई शताब्दियों के ऐतिहासिक अनुभव के आधार पर हम विकास की राजनीतिक अर्थव्यवस्था के कुछ सिद्धांतों पर एक समीक्षा प्रस्तुत करने की कोशिश करते हैं।

## **6.6 राजनीतिक अर्थव्यवस्था के कुछ महत्वपूर्ण पहलू: विकास के सिद्धांत**

विकास की मुख्य धारा के आर्थिक सिद्धांतों की तुलना में, PED प्रतिकूल स्थिति की उपपत्ति, स्वर शैली और शाश्वतीकरण के प्रति कठोर, ऐतिहासिक और अत्यधिक गहन दृष्टिकोण अपनाती है परन्तु कार्यों की अपरिहार्य स्थिति में अधिकांश विश्व विशेष रूप से एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका के देशों के नागरिक तथा अमीर देशों के गरीब लोग इसका विविध रूपों में मुकाबला कर रहे हैं। वस्तुतः एक स्तर पर, कुछ देश स्वयं को ऐसी अपरिहार्य स्थितियों में पा रहे हैं, जबकि दूसरे स्तर पर व्यष्टियों और विभिन्न प्रकार से गठित समूह तथा वर्गों का ऐसा बहुमत है जिसे शक्तिहीन कर दिया गया है। विकास के सिद्धांतों को इस विविधता के बीच में सार्वजनिक पष्ठभूमि तलाश करनी है ताकि ये सिद्धांत इसके संयोजन में प्रत्येक की विशिष्ट स्थिति में लागू हो सकें। इस प्रकार, विकास के सिद्धांत भाग्य, प्रास्थिति, लोगों की कार्य प्रणाली, संस्थाओं तथा धनी और निर्धन देशों में उनकी अंतरराष्ट्रीय अन्तर्क्रियाओं और आन्तरिक रिश्तों व देशों के भीतर गतिशीलता में मूल्यों पर समान रूप से लागू होते हैं। विशेष रूप से उत्पादन के विभिन्न घटकों के बीच अपर्याप्तता और समानुपात की कमी (मुख्यतः पुनरोत्पादेय भौतिक बल बनाम श्रमबल तथा उपलब्ध पूँजी में मूर्त रूप प्रौद्योगिकी की कम उत्पादकता वाला द्राक्षा संचयन) के शब्दों में विकास की कमी अथवा अपर्याप्तता अथवा विरूपण के ऐतिहासिक और सामान्य दृष्टिकोण से भिन्न स्थिति जो विद्यमान में तथाकथित विकसित देशों की पूर्व जैसी अथवा पूर्ववर्ती स्थिति के रूप में मानी जाती है, PED उस समय प्रचलित संसाधनों, प्रौद्योगिकी, संस्थाओं, मूल्यों और दृष्टिकोणों के गुणज के रूप में विभिन्न लोगों और देशों की सामाजिक-आर्थिक दशा का एक ऐतिहासिक दृष्टिकोण अपनाती है। इस पहलू के अनुसार, विद्यमान में बहुत से गरीब देश विशेष रूप से चीन, भारत आदि उस समय प्रचलित मुकाबले पर थे जबकि उत्तरी देश काफी पीछे थे। इस प्रकार प्रश्न उठता है कि क्यों, कैसे और कब अभिनय, स्थिति और प्रास्थिति का प्रतिक्रमण हुआ अथवा एक शब्द में, सापेक्ष राष्ट्रीय शक्ति अस्तित्व में आई अपितु सकल घरेलू उत्पाद और जनसंख्या के विद्यमान स्तरों के पश्चमुखी वाग्विस्तार की अऐतिहासिक और अवास्तविक कवायद करते हैं और विभिन्न गरीब देशों बनाम विद्यमान धनी, उद्योगीकृत देशों के विकास में व्यवधान के कारणों का पता लगाते हैं। एक सहवर्ती लक्षण यह है कि अन्तरराष्ट्रीय मतभेदों और असमानताओं तथा सापेक्ष शक्तिहीनता की तरह, विशेष रूप से उन देशों में घरेलू तौर पर समान लक्षणों वाला पीड़ावर्धन हुआ जो अन्तरराष्ट्रीय तौर पर पिछड़ गए थे और फिसड्डी रह गए थे। यह घटक भी अन्तरराष्ट्रीय घटनाक्रम से जुड़ी हुई रीति से विधिक और ऐतिहासिक तौर पर स्पष्टीकरण की अपेक्षा करता है। इस अभिगम और क्रियाविधि में भी विद्यमान धनी देशों के नज़दीकी विगत की एक दर्पण जैसी प्रतिमा के रूप में कम विकसित (विकासशील अथवा कम विकसित) देशों की विकास स्थिति को परिभाषित करने के नास्तिकवादी अथवा उत्तरी देशों के केन्द्रित मकड़जाल

से बचने के लिए निहितार्थ अन्तर्ग्रस्त है। यह विकास अथवा औद्योगिकीकरण का अनुकरणीय आकर्षण नमूना उन देशों में इतिहास, संस्कृति, स्वतंत्रता अथवा आजादी (स्वायत्तता और स्वकेन्द्रीयता), प्राकृतिक भंडार, बदलते हुए, भू-राजनैतिक घटक और अनुकूलन की स्वतंत्र प्रक्रियाओं तथा प्रौद्योगिकियों के विकास से इंकार करता है जो तथाकथित आधुनिकता के रास्ते पर शुरू में आगे नहीं आ सके तथा दूसरों के वर्चस्वाधीन तथा पराधीन हो गए।

यूरोप में उद्योगीकरण पूर्व के ऐतिहासिक विश्लेषणों, भूमि सुधार सम्बन्धी परिवर्तनों, औद्योगिक क्रांति, पश्चिमी देशों का राजनीतिक और सैन्य वर्चस्व, विशेष रूप से वणिकवादी राज्यों जिन्होंने धन पूँजी के प्रारंभिक अथवा पूर्व संचयन में एक बड़ी भूमिका निभाई थी, की सक्रिय विकासोन्मुख भूमिका के साथ-साथ उनकी सामुद्रिक क्षमताओं और शक्ति, सांस्कृतिक, सामाजिक और धार्मिक रूपान्तरण, सामाजिक-आर्थिक सत्ता संतुलन को बदलने वाले राजनीतिक विप्लव आदि जो लगभग पाँच शताब्दियों की अवधि में बने रहे, 18वीं और 19वीं शताब्दियों के दौरान प्रौद्योगिकीय सफलता के लिए निर्णायक थे जिनसे आधुनिक आर्थिक विकास और राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय तौर पर बढ़ती हुई असमानताओं के युग का आरंभ हुआ। भारत सहित अफ्रीकी, एशियाई और लैटिन अमेरिकी देशों का राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक वर्चस्व अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में सामान्यतः इन परिवर्तनों का दूसरा पक्ष नहीं था क्योंकि इन देशों के घरेलू हालात ने भी उनके अधीनीकरण में योगदान दिया। जिस तरीके से जापान ने आन्तरिक गतिशीलता के कारण वर्चस्व और प्रतिवाद के इस दुर्भाग्य से स्वयं को बचाया, उससे इस सुझाव का अवमूल्यांकन होता है कि सार्वभौमिक घटकों ने सक्रिय तौर पर घरेलू घटकों के साथ मिलकर सहायता की/काम किया। काफी बड़ी संख्या में देशों को गरीब और अधीनस्थ तथा बड़ी संख्या में उनके लोगों पर काबू पाते समय उन प्रक्रियाओं जिन्होंने कुछ देशों को (उनके आन्तरिक, व्यापक तौर पर गैर-कार्यात्मक मतभेद की ओर ध्यान दिए बिना) शक्ति सम्पन्न बना दिया, पर विचार करना एक बहुत ही जटिल और लम्बा विषय है। प्रत्येक देश की इस प्रकार की स्थिति के साथ-साथ अनुभवजन्य अध्ययन करने पड़ते हैं। मुख्य मुद्दा यह है कि यह विविध घटकों का संयोजन था जिसने अन्तरसम्बन्धित तरीके से राष्ट्रों के भीतर राष्ट्रों और लोगों के बीच एक बड़ी दरार पैदा कर दी जिससे कुछ देशों को समृद्धि तथा बहुतों को गरीबी हाथ लगी। इन प्रक्रियाओं के दीर्घकालिक प्रभाव तथा गरीब देशों के लिए उनके अस्वास्थ्यकर परिणाम गरीब देशों में उनके सामाजिक अस्तित्व के विभिन्न पहलुओं के बीच स्वीकारात्मक सहजीवी सम्बन्धों के दम घुटने के रूप में देखे जा सकते हैं जिनके कारण उनकी भौतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक-आर्थिक दशा बिगड़ती गई। वे निर्धन तथा शक्तिहीन जनता वाले अधोनती देश बन गए।

उदाहरण के लिए, राज्य आर्थिक विकास, औद्योगिक विस्तार, उद्यमियों, अनुसंधानकर्ताओं, व्यापारियों, आधुनिक ढंग अपनाने वाले कलाकारों आदि को समर्थक सेवाएँ और सुविधाएँ मुहैया कराने के लिए आन्तरिक और बाह्य दोनों परिस्थितियों का सजन करके उद्योगीकरण की प्रक्रिया में एक शक्तिशाली उपस्कर था जिससे घरेलू और अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियाँ आर्थिक क्रियाकलापों को सुचारू रूप से चलाने तथा उनके विस्तार करने, प्रबंधन संकटों, विकृतियों तथा विरोधाभासों के लिए लाभदायक सिद्ध हुई। श्रमबल सहित निवेशों की सस्ती आपूर्ति सुनिश्चित करने से लेकर उत्पाद की लाभकारी बिक्री तक प्रौद्योगिकी संरक्षण, लाभकारी निवेश अवसरों तक पहुँच सुनिश्चित करना, उनके विस्तार के लिए बाज़ार उपलब्ध कराना, विदेशी प्रतिस्पर्धा से बचाव, सस्ती आपूर्ति के लिए पहुँच सुनिश्चित करने के लिए बाहुबल का प्रयोग, राज्य की हितकर मौजूदगी एक समृद्ध उद्योगीकृत अर्थविज्ञान में प्रत्येक चरण पर निर्णायक



थी। स्पष्टतः, बाज़ार बलों का भी प्रयोग किया गया परन्तु उनकी कमी को पूरा किया गया तथा एक सतर्क और मैत्रीपूर्ण सरकार द्वारा उनकी शक्तियों का नकदीकरण किया गया। विभिन्न कारणों से, कई मुख्य धाराएँ, विकास अर्थविद् भी राज्य द्वारा निभाई गई निर्णायक भूमिका को मान्यता प्रदान करते हैं। भारत में जहाँ दर्जनों संघीय शासक बढ़ती हुई सार्वभौमिक चुनौतियों को समझ नहीं पा रहे थे, वहाँ आधुनिकीकरण की नई प्रक्रियाओं के प्रभाव के अधीन आधुनिकीकरण की नई लहर महाद्वीपों के आर-पार हिलोरे ले रही थी तथा यह महान् ऐतिहासिक अवसर चूक गए थे।

कई देशों के अनुभवों के तुलनात्मक ऐतिहासिक विश्लेषण से पता चलेगा कि राज्य विपणन सापेक्ष भूमिकाई विरोधाभास किसी एक को पूरी तरह स्वीकार करने तथा दूसरे को नकार देने की आंतरिक स्थिति के बारे में नहीं है। प्रश्न राष्ट्रों, समुदायों, व्यष्टियों/फर्मों आदि बनाम विकास प्रक्रिया में अन्य लोगों की परिस्थितियों को सुधारने/बिगाड़ने में उनकी सापेक्ष भूमिका के बारे में हैं। परन्तु अभिरुचियों, समूह आधारित वैचारिक और राजनीतिक घटकों ने अत्यंत विरोधाभासी और यहाँ तक पारस्परिक दुर्दमनीय स्थितियों को जन्म दिया जो वास्तव में, न तो फल देने वाली हैं और न ही ज्ञानवर्द्धक हैं।

ऐसे अभिगमों के परिणाम कई रूपों में देखे गए। कुछ सिद्धांतों ने साम्राज्यवाद को भूमंडलीय विभाजन और अव्यवस्थित सम्बन्धों तथा अत्यधिक मानवीय, सामाजिक, आर्थिक आत्मिक लागतों जो इसने अधिरोपित की, के लिए एकमात्र दोषी ठहराया। उपनिवेशवाद के समाप्त होने के बाद, अन्य लोगों ने भूतपूर्व प्रमुख शासकीय, अवशोषणात्मक शक्तियों को 'विकासोन्मुख सहभागी' के रूप में माना जो अपनी पूँजी, प्रौद्योगिकी, प्रबन्धन-संगठनात्मक दक्षता को आपस में बाँटने के इच्छुक थे क्योंकि गरीबी को प्रत्येक जगह समृद्धि, जहाँ कहीं भी थी, के लिए खतरे के रूप में पाया गया। विभिन्न स्वरूपों में अन्तरराष्ट्रीय पूँजी आंदोलनों द्वारा समर्थित पूँजी संचयन, प्रौद्योगिकी हस्तान्तरण, विस्तार सेवाएँ आदि जैसे सम्पूर्ण परिवर्तनशील मुद्दे विकास में योगदान के आवश्यक घटकों के रूप में माने गए थे। बचत, निवेश, औद्योगिक उपक्रम, निर्यात, मानव पूँजी गठन और निपुणता आदि को प्रोत्साहित करने के लिए कई कठोर और परिष्कृत प्रतिदर्श पेश किए गए। कृषिक और औद्योगिक विकास को आसान बनाने के लिए न्यायसंगत भूमि स्वामित्व के स जन के लिए कुछ भूमिका भी सौंपी गई थी। विभिन्न प्रकार के विकास नियोजन प्रतिदर्श की गतिशीलता, समन्वयन और दीर्घकालिक संस्तर-स्थिति के अनुयोजन के पक्ष में प्रस्तुत किए गए। यह एक उत्कृष्ट उद्योगीकरण पथ था जो उधारीकृत उत्पाद-मिश्रण, प्रौद्योगिकी, पूँजी (वित्त), उद्यम और प्रबंधन पर आधारित था। लोकक्षेत्र का प्रभुत्व, निजी क्षेत्र, पूँजी और तीन (विभिन्न मिश्रित अर्थ-व्यवस्था प्रतिदर्श) के विभिन्न संयोजन और संचयन जैसे कई विभिन्न स्वामित्व और प्रतिबंधन प्रतिदर्श विकास साहित्य के हिस्से बन गए।

उद्योगीकरण से असममिति रूप से जुड़े हुए पूँजीवादी, अनुकृत तथा अधीनस्थों के इस प्रतिदर्श को औपचारिक/न्यायिक राष्ट्रीय संप्रभुता के अधीन पराधीन सम्बन्ध की निरन्तरता का नाम दिया गया। व्यवसाय अथवा स्वैच्छिक उपनिवेशीकरण के बिना इसका आर्थिक साम्राज्यवाद अथवा उपनिवेशवाद के रूप में विरोध किया गया। इसके विरोधियों ने शनैः शनैः विकासोन्मुख वृद्धि/विकास की बजाएँ क्रांति और अलग होने का तर्क दिया।

उन्होंने बार-बार जोर दिया कि वहाँ अवपूँजीवाद उत्पाद बलों में जबर्दस्त परिवर्तन हो सकता है जिससे क्षेत्र और क्षेत्रकों की उत्पादकता से होने वाले व्यापक लाभ उन्मुक्त हो जाएँगे परन्तु एक विषम, अस्थिर



प्रक्रिया से भारी और असमान लागत तथा पर्याप्त रूप से संकेन्द्रित लाभों का विभाजन हो जाएगा, इसके निजी स्वामित्व वाले निगमित सामाजिक सम्बन्ध अधिकाधिक विकेन्द्रित और संकेन्द्रित हो जाएँगे। परिणामस्वरूप, इसे अर्थव्यवस्था के नियंत्रण में व्यक्तियों, परिवारों और फर्मों का एक संकीर्ण राष्ट्रीय और सामाजिक आधार प्राप्त होता है। इससे अधिकाधिक विशाल संख्या में राष्ट्र, व्यक्ति और सामाजिक समूहों की हानि हुई और वे अभावग्रस्त हो गए क्योंकि निवेश (चाहे वह संतुलित अथवा असंतुलित पैकेज में हो) क्रांति के माध्यम से बढ़ाये गए पुनरुत्पादन की प्रक्रिया ने संसाधन धारकों की माँगों को पूरा किया तथा शेष को छोड़ दिया। पूँजी, प्रौद्योगिकी, वित्त आदि के ऊपर नियंत्रण के संकीर्ण आधार से सांस्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्रों का विस्तार होता है। गरीबों के ऊपर आरंभिक उद्योगीकृत अत्यधिक अमीर देशों और उनके सत्ताधारक निगमित निकायों का अधिकाधिक वर्चस्व होता है तथा उनका अवधारण होता है। इस प्रकार के तर्क समाजवादी, केन्द्रीय रूप से नियोजित अर्थव्यवस्था और अपने निजी कामगारों, कार्यरत गरीब लोगों और बुद्धिजीवी लोगों जिनमें कभी-कभी व्यापारी वर्ग भी शामिल होता है, की सहायता से पूँजीवादी विश्वव्यवस्था से पूरी तरह अलग होने का आधार बन गए। कई परिवर्तन और अधूरी तस्वीर वाले पूँजीवादी उद्योगीकरण विद्यमान में शक्तिशाली और संसाधन धारक वर्गों से सहायता पर आधारित थे अथवा उससे सहायता ले रहे थे।

यह तर्क दिया गया था कि इस दृष्टिकोण वाले इन पूर्व उपनिवेशों और वर्गों के संभाव्य अधिशेष उसी प्रकार सामने आया जिस प्रकार उन सिद्धांतों के मामले में हुआ जिनसे देश इसी प्रकार के वास्तविक गतिशील अधिशेष से ऊपर की स्थिति में पहुँच गए। इसी प्रकार, कमजोर गतिशील श्रमबल को भी संभाव्य अधिशेष के स्रोत के रूप में माना गया। इस प्रकार इस मामले में पूर्ववर्ती उपनिवेशी शक्तियों और उनके बड़े-बड़े बहुराष्ट्रीय निगमों की अजनबी पकड़ से अर्थव्यवस्था को मुक्त करने के लिए तर्क दिया गया था। स्पष्टतः, उससे अन्तरराष्ट्रीय पूँजी के मुकाबले में देशी प्रतिद्वन्द्वियों की भूमिका में कमी आई। ये नीतियाँ संवत् अर्थव्यवस्था के लिए नहीं थी अपितु इन्होंने निश्चित तौर पर अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों के लिए एक भिन्न, अधिक समतावादी और व्यापक आधार वाली नई वस्तुकला के लिए तर्क पेश किया था जो नई अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था (NIEO) पर संयुक्त राष्ट्र के संकल्प में प्रसंगवश प्रतिबिम्बित हुआ था। शीत युद्ध काल में समाजवादी ब्लॉक ने भी इस प्रकार के सिद्धांतों का समर्थन किया। परन्तु समाजवादी क्रांति का विकास-पथ (जो चर्चा का विषय था) के रूप में तर्क देने की बजाए उन्होंने अधिकांशतः गैर पूँजीवादी विकास के एक संक्राम्य चरण के लिए तर्क दिया। अनुवर्ती स्थिति का अर्थ है विशाल और विकासोन्मुखी राज्य क्षेत्रक का सजन, आधुनिक औद्योगिकीकरण, मौलिकता को उच्च प्राथमिकता, पूँजीगत और भारी उद्योग तथा बढ़ता हुआ आत्मविश्वास जो किसी के अन्तरराष्ट्रीय संव्यवहारों के लिए उसकी राष्ट्रीय भुगतान क्षमता का प्रतीक हैं।

वास्तव में महत्त्वपूर्ण और आमतौर पर अनदेखा किया गया मुद्दा है सादृश्यमूलक संभावना और अपेक्षा प्रतिदर्श, उद्योगीकरण और आधुनिक विकास पर नियंत्रण। सम्बन्ध-विच्छेद, चुनिन्दा सम्बन्ध-विच्छेद अथवा सम्मति के तौर पर सम्बन्धों को पुनः जोड़ने वाले विद्यालयों ने ठीक उस प्रकार के औद्योगिक और उत्पादन संरचना के लिए आवश्यकता और अपेक्षा को स्वीकार किया है जैसा कि बदले हुए स्वामित्व और नियंत्रण, प्रबंधन शैली और परम्पराओं में परिणामी परिवर्तन, अन्तःक्षेत्रक विकास की एक भिन्न श्रृंखला नामतः भारी, मौलिक तथा पूँजीगत सामान वाले उद्योग तथा अन्तरराष्ट्रीय आन्तरिक सम्बन्धों के एक अधिक स्वयंकेन्द्रित प्रतिदर्श को छोड़कर अमीर देशों में प्रचलन में है। इस दृष्टिकोण से प्रमुखतः निजी

और निजी निगमित क्षेत्र से लोक (राज्य) स्वामित्व के बदलते हुए स्वामित्व के आधार पर सामाजिक रूप से स्वीकार्य और अपेक्षित परिणाम प्राप्त करने के लिए बदले हुए प्रबंधन तंत्र पर भारी बोझ पड़ता है। स्पष्टतः उत्पाद-मिश्रण, प्रौद्योगिकीय अवसर, श्रमिक सम्बन्धों, प्रबन्धन शैली, सामाजिक आवश्यकताओं के प्रति उद्दीपनशीलता, पारिस्थितिकी स्थितियाँ आदि के परिप्रेक्ष्य में बदले हुए परिणामों की संभावना सीमित है विशेष रूप से जब उद्योगों का समान प्रतिदर्श दो विभिन्न स्वामित्वों और प्रबन्धन तंत्रों के तहत अनुयोजित होता है।

इस प्रकार, रोज़गार, कम आय वाले व्यक्तियों के लिए उपयुक्त सामान का उत्पादन, घटक आय में शेर, कामगारों की भूमिका और स्थान, क्षेत्रीय प्रतिदर्श, पारिस्थितिकीय जाग्रति आदि ऐसे मुद्दे बन जाते हैं जो उनको स्वतंत्र और स्वायत्त प्रतिक्रिया की बजाए सहायक बना देते हैं तथा प्रतिफल प्राप्त कराते हैं। इससे उन मुद्दों को प्राथमिकता कम हो जाती है जो व्यापक सामाजिक बनाम उनके वर्गीय हित वाले होते हैं जिनके पास पर्याप्त सामाजिक और आर्थिक शक्ति होती है। इस प्रकार, आवश्यक रूप से सकल घरेलू उत्पाद सूचकांक के परिप्रेक्ष्य में वर्गीय/क्षेत्रकीय/संकीर्ण 'विकास' में अन्यायपूर्ण और अनपेक्षित बलिदान अन्तर्ग्रस्त होते हैं जिनके कारण अवश्यमेव अमीर और अधिक अमीर तथा गरीब और अधिक गरीब हो जाते हैं। अनौपचारिक/असंगठित क्षेत्र चाहे वह उनके द्वारा उत्तरजीविता रणनीति के रूप में सामने आया हो जो विकास-केन्द्रित प्रक्रियाओं द्वारा छोड़ दिए गए थे अथवा सीमांतक हो गए थे और/अथवा स्थिरता और निश्चितता अवधि की आदिकालीन गाथा के अवशेष के रूप में बना रहा, की प्रबलता, गुप्त संसाधनों के स्रोत तथा उन गरीबों में छुपी हुई क्षमताओं की अभिव्यक्ति है जो प्रबल विकास प्रतिदर्शों में व्यापक रूप से पहचान नहीं बना सके। इसके प्रतिकूल, ये प्रतिदर्श अथवा सिद्धांत आधुनिक, उच्च उत्पादकता वाले क्षेत्रों द्वारा इनके आदि रूप के मंद गति से समावेशन के अभिग्रहण को उन्मुख हो रहे हैं। भारत के मामले से पता चला है कि यह मान्यता प्राप्त क्षेत्र नहीं है जो जनसंख्या के अधिभावी हिस्से को जो श्रमबल के 92 प्रतिशत से अधिक बनता है, जीविका दिलाने के लिए अर्थव्यवस्था का गतिशील घटक मुहैया करता है।

तथापि, चर्चा की जाती है कि विकास की कई 'संशोधित' धारणाएँ, प्रक्रियाएँ और अभिकर्ता अर्थव्यवस्था के विकास को उन घटकों को बढ़ाने/कम करने के कार्य से साथ-साथ अथवा बाद में जोड़ने की कोशिश करते हैं जो प्रस्तुत वास्तविकता को अस्वैच्छिक, संकीर्णतः संकेन्द्रित तथा भारी सामाजिक दायित्वों से पूर्ण बनाते हैं। वे लगातार व्यापक मोहभंग (जब सकल घरेलू उत्पाद सूचकांक प्रभावी लाभ दर्शाते हों) करते रहते हैं। तथापि, इसे मान्यता देनी पड़ेगी कि विभिन्न 'विकास' सिद्धांतों द्वारा यथा विकसित विस्तार, सुधार, स्थानान्तरण की प्रक्रियाओं के तकनीकी आर्थिक पहलुओं के बारे में अन्तर्दृष्टि ने अपने सीमित मूल्य और वैधता को बनाए रखा है। परन्तु विकास की अपूर्ण कार्यसूची, उनके द्वारा उत्पन्न विकृतियाँ तथा अपरिहार्य मानवीय और सामाजिक खर्चे उन प्रयासों की आवश्यकता दर्शाते हैं जो ऐसी प्रक्रियाओं के माध्यम से व्यापक सामाजिक परिप्रेक्ष्य, संघर्षों को मान्यता देने, व्यापारिक दावपेंच, पूर्वघटित प्रवृत्तियाँ, सर्वनिष्ठ तथ्य, पारस्परिकताएँ तथा प्रतीकात्मक जोड़ तोड़ों के अनुसार विकास की विषय-वस्तु तथा प्रमात्रा को बदला जा सके, जो अभिरुचि स्थान को सीमित/विकृत करके मानवीय व्यक्तित्व और क्षमताओं का दम घोटने की बजाए मिलनसार सामाजिक परिवेश में मानवीय क्षमताओं का विस्तार करती हैं तथा उनके फूलने-फलने में सहायक होती है। पूर्ववर्ती सुधारवादी वर्ग के विकास सिद्धांतों एवं तकनीकों के मध्य समग्र, क्षेत्रकीय तथा क्षेत्रीय विकास के विभिन्न विशाल आर्थिक प्रतिदर्श, अन्तर उद्योग सम्बन्धी

प्रतिदर्श, संतुलित तथा असंतुलित विकास सिद्धांत विशाल धक्का सिद्धांत, मूलभूत आवश्यकता सिद्धांत, न्याय के साथ विकास सिद्धांत, स्वकेन्द्रित सिद्धांत आदि चर्चा के विषय बन सकते हैं। मुख्य मुद्दा है : वे नीति निर्णयन और कार्यान्वयन में सहायक बनते हैं परन्तु व्यापक अर्थ में, अधिक मौलिक सामाजिक बल तथा सामाजिक संरचना की अंग-प्रत्यांगों की एकता मुश्किल से ही इन सिद्धांतों और प्रतिदर्शों में प्राथमिकता प्राप्त करती है।

इस मुद्दे पर विकास की अन्य आंशिक, क्षेत्रक सिद्धांतों की शाखा द्वारा उठाए गए उन प्रश्नों को प्रस्तुत करना तर्क संगत है जिन पर प्रतिक्रिया की गई हो। हमारा तात्पर्य विभिन्न सामाजिक और आर्थिक विकास के विभिन्न सिद्धांतों से है। PED मुश्किल से इस प्रकार के आंशिक विकृत, सीमित संदर्भ, पथकीकृत सिद्धांतों को सुसंगत और उचित रूप से स्वीकार करेगी। परन्तु पुनः इन सिद्धांतों से मिलने वाला आवश्यक संदेश सामाजिक घटनाक्रम की आंगिक एकता पर जोर देना है। अधिक विशिष्ट रूप से उत्पादन, उत्पादकता, उत्पादन की लागत आदि को दक्षता से जुड़े हुए आर्थिक मुद्दों के रूप में रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा, लैंगिक मुद्दे, बाल कल्याण आदि से सामाजिक रूप से भिन्न विचार करना आधिक्य अर्थवाद की एक बिल्कुल नई गाथा है। इसी प्रकार, राजनीतिक और प्रशासनिक प्रक्रियाओं की भूमिकाएँ विकास प्रशासन के सन्दूक में बन्द कर दी जाती हैं तथा जब इसका आधारिक स्तर पर सहभागिता, सापेक्ष और निरपेक्ष सामाजिक न्याय, शासन के स्वरूप और पद्धतियों तथा प्रतिविधियों की रुचि के प्रश्न को शामिल करने के लिए विस्तार किया जाता है तब उन्हें राजनीतिक विकास से सम्बन्धित प्रश्न के रूप में लिया जाता है। ये अन्य बातों के साथ-साथ विकास के साथ वृद्धि की अधिकता के रूप में पहचान के परिणाम हैं और सामाजिक व्यवस्था में अपने संरक्षकों और समर्थकों के साथ श्रमबल का अकादमी विभाजन तथा अकादमी क्षेत्र में विशिष्टीकरण का प्रदर्शन करते हैं। PED ने विकास के प्रश्न पर एक एकीकृत समेकित सामाजिक परिप्रेक्षण विकसित करने का प्रयास किया है। विकास की प्रक्रिया व्यावहारिक पष्ठपोषण के आधार पर परिमार्जन तथा PED से सम्बन्धित अकादमी अन्तर्क्रिया के परिणामस्वरूप अभी अपने शैशवकाल में हैं। वैकल्पिक विकास, विकास के बाद, विकास विमुख तथा आधुनिकीकरण विरोधी विद्यालयों, सुनियोजित, व्यापक तौर पर विकसित सुसंगत विचारों, सिद्धांतों, धारणाओं आदि के मुकाबले मुख्य प्रवाह के सिद्धांतों और आर्थिक विकास के प्रतिदर्शों से व्यापक मोहभंग का परिणाम हैं। विकासोन्मुख विकास के इतिहास को जानने की प्रबल आवश्यकता को किसी भी स्थिति में अधिकल्पित नहीं कहा जा सकता।

विकास के प्रचलित अभिगमों के प्रतिकूल प्रभाव आवश्यकता पुनरावृत्ति को भी भलीभाँति ज्ञात हैं। आंशिक, विशिष्ट अनुशासन (प्रमुखतः अर्थविज्ञान) आधारित अभिगमों के परिणामस्वरूप, विश्व के कई हिस्से अन्तिम शताब्दी के दौरान विशेषतया उसके अन्तिम दौर में सामाजिक और व्यष्टिगत जीवन में विकृत, निष्फल, अंशतः, हिंसाग्रस्त, असंतुलित, अस्थायी, अन्याययुक्त, सामाजिक रूप से खर्चीले और पर्यावरण के तौर पर भयानक तथा/अथवा विनाशकारी परिवर्तनों के साक्षी थे, भारत में भी ऐसा अनुभव हुआ। इन सत्य, दूरगामी और त्वरित परिवर्तनों ने विशेष रूप से अल्पकालिक दृष्टिकोण से कुछ वर्गीय अभिरुचियों को भलीभाँति पूरा किया। परन्तु इन अस्थायी परिवर्तनों (प्रायः विकास के रूप में वर्णित) से अवमूल्यनकारी और ऋणात्मक वापसी अनदेखी नहीं रही।

अन्तरराष्ट्रीय संसाधन 'अंतरण' की भूमिका अथवा अधिक स्पष्ट तौर पर राष्ट्रीय सीमाओं के पास पूँजीगत आन्दोलनों के साथ-साथ पूँजी संचयन के स्वायत्त और प्रेरित, दोनों व्यवहारों के संदर्भ में सकल

घरेलू उत्पाद के रूपान्तरण का वास्तविक परिकलन और उसका परिणाम ग्राफ के रूप में उदाहरणस्वरूप दर्शाया जा सकता है।

## 6.7 पूँजी संचयन : भूमिका और सीमाएँ

उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ आर्थिक वृद्धि की पहचान का प्रत्यक्ष प्रमाण पूँजी संचयन को निर्णायक विकास/औद्योगिकीकरण का सौंपा जाना था। कई लोग पूँजी स्टॉक की सापेक्ष अपर्याप्तता और पूँजी निर्माण के धीमी वृद्धि को कम आय, गरीबी और पिछड़ेपन का मुख्य कारण मानते हैं। इस प्रकार पूँजी संचयन अर्थात् बचत और निवेश की दर में वृद्धि करना (सन्निहित प्रगतिशील प्रौद्योगिकी के साथ) विकास के मुख्य गतिशील घटक विकास नीति और नियोजन के पथ के रूप में माना गया था। आरंभ में आर्थर जैसे विकास अर्थविद् तथा विकास सिद्धांतों की स्थितियों ने स्पष्ट किया कि उच्च बचत और निवेश पद अर्थव्यवस्था को संक्रमण आय के विकास का आधार अवनिर्धारित करता है। कीनेशियाई और पश्च कीनेशियाई दीर्घकालिक आर्थिक सिद्धांत दोनों के आधार पर विभिन्न पूँजी उपस्कर संचयन को बढ़ावा देने में त्रस्त हो गए। जबकि अधिक पूँजी सामान्यतः उत्पादन की उच्च दर के लिए योगदान करती है, सैद्धान्तिक तथा वास्तविक दोनों अनुभवों से पता चलता है कि सम्बन्ध न तो निश्चित होता है और न एक से एक का सम्बन्ध हमेशा स्वीकारात्मक और नियत होता है। तथापि, इस प्रकार पूँजी आधारित संवर्धित आय के उत्पादन के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव हमेशा स्वीकारात्मक और वांछित नहीं होते जैसा कि हमने आय से जुड़े हुए सूचकांकों की सीमाओं और अपर्याप्तता पर चर्चा करते समय देखा। पूँजीगत उत्पादन अनुपात और राष्ट्रों, उद्योगों, कालावधि, क्षेत्रों आदि के पार परिवर्तनशीलता के बीच व्यापक अपसारिता यह विश्वास करने का कारण बताती है कि पूँजी निर्माण के विकास की धनात्मक दरें हमेशा आवश्यक रूप से संवर्धित उत्पादन प्रवाह से नहीं जुड़ी होती। कई विभिन्न प्रकार के पुनर्संगठन, पुनर्गठन, नीति हस्तक्षेप आदि से संभव है कि बिना किसी अतिरिक्त पूँजी निवेश के व्यष्टियों और समुदायों दोनों के लिए आय कल्याणकारी स्तरों में वृद्धि हो। पुनर्आबंटनीय और विस्तारवादी दोनों, इस प्रकार के कई हस्तक्षेप भौतिक और वित्तीय पूँजी निर्माण से मुक्त होते हैं। तथापि, काफी लम्बे समय से, सामान और सेवाओं के प्रवाह को बढ़ाने के लिए एक आवश्यक शर्त के रूप में पूँजी निर्माण की भूमिका से इंकार नहीं किया जा सकता है। कई अन्य प्रकार के घटक और परिस्थितियाँ पूँजी संचयन का प्रभाव अवधारित करने के क्रम में हस्तक्षेप करती हैं। X-दक्षता का सिद्धांत मूलतः ऐसे प्रभावों से सम्बन्धित है। इस प्रकार यह ऐसा घटक है जिसे स्वयमेव निर्णायक नहीं माना जा सकता। पूँजी संचयन की संभावनाएँ, दर और निर्माण, आर्थिक और अनार्थिक, विगत और विद्यमान घटकों की भीड़ जिसमें भविष्य की उम्मीदें भी शामिल हैं, में आकास्मिक हैं। व्यक्त और अव्यक्त प्रौद्योगिकी, भूमि, श्रमबल, पूँजी, प्रौद्योगिकी और संबंधित घटक के मूल्यों के बीच विद्यमान समानुपात, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रतिष्ठान, माँग की प्रमात्रा और प्रतिदर्श, उद्यमीय मानसिक तैयारी (पाशविक उत्साह, भूमंडलीय संरचना आदि उन बीसियों घटकों में से हैं जो पूँजी संचयन को स्वयमेव पराधीन परिवर्तनशील बना देते हैं। इस संदर्भ में, भारत के संगठित, विशेष रूप से संगठित औद्योगिक क्षेत्र में दृश्यमान स्थिति को याद किया जा सकता है जो पूँजी के विशाल भंडार और अधिकांश प्रगतिशील प्रौद्योगिकी के असमानुपातिक तौर पर हिताधिकारी होने के बावजूद रोजगार और सकल घरेलू उत्पाद के सापेक्षतः अल्पांश का योगदान करती है।

तब, घरेलू घटकों के साथ, वंशानुगत सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं और संस्थाओं की तरह, अन्तरराष्ट्रीय घटक और पर्यावरण की पूँजी संचयन (इसकी दर, प्रतिदर्श और प्रबन्धन), विशेषतः भूमंडलीय असमानताओं, गतिशील तुलनात्मक लाभ, श्रमबल और भूमंडलीय शक्ति संतुलन के अन्तरराष्ट्रीय विभाजन, विशेष रूप से आर्थिक और सैन्य शक्ति के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रों के बीच दूरी पर शक्तिशाली प्रभाव डालते हैं। देश बनाम शेष का उत्पादकता विभेदन जितना अधिक होगा, इसका निरपेक्ष और सापेक्ष जितना छोटा होगा, विद्यमान प्रौद्योगिकीय क्षमताएँ जितना कम होंगी और उच्च उत्पादकता वाले देशों की तरह जितना अधिक अभिप्रेरणा होगी, तब निम्नस्तर वाले देश के लिए गैर-बर्हिजनित, स्वायत्त पूँजी संचयन करना उतना ही अधिक मुश्किल होगा। वास्तव में, प्रत्याशाओं में उस समय नाटकीय परिवर्तन हो सकता है यदि गुणात्मक रूप से भिन्न गैर-अनुकरणीय विकास-पथ तथा प्रतिदर्श का अनुयोजन हो। मुद्दा है : पूँजी संचयन एक बड़ी संख्या में आर्थिक और गैर-आर्थिक घटकों द्वारा प्रभावित स्वयमेव पराधीन परिवर्तनशील है। पूँजी संचयन का प्रतिदर्श, इसका संस्थागत संगठनात्मक स्वरूप और संरचना, प्रौद्योगिकीय स्वरूप आदि परिवर्तन और रूपान्तरण की प्रक्रियाओं में इसकी भूमिका का अवधारण करना कितना निर्णायक है। परम्परागत, मुख्य प्रवाह का विकास अर्थशास्त्र पूँजी निर्माण से ग्रसित है (जैसा कि विकास प्रतिदर्शों और सकल घरेलू उत्पाद के अवधारकों पर साहित्य से देखा जा सकता है)। यह मूलतः सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि पर आधारित अनुकरणीय, पकड़ में आने वाला औद्योगिकीकरण रूपांतरण है। यह इस बात को मान्यता नहीं देता कि विगत में सफल प्रतिद्वंद्वी जिन्होंने केवल पूर्वजों की बराबरी नहीं की थी अपितु कइयों से आगे भी निकल गए थे जिनके साथ अपेक्षाकृत अन्तर बहुत कम था जिनकी सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक पष्ठभूमि समान थी, अन्तरराष्ट्रीय भू-राजनीति में, किसी को पकड़ने और आगे निकलने में प्रबल राष्ट्रवादी भावना वाले, राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी थे और परम सौभाग्यशाली थे जिससे आन्तरिक और बाह्य अनुकूल घटक उनके पक्ष में रहे। आज की तरह, वर्तमान में गरीबों के लिए विलम्ब से औद्योगिकीकरण, विशाल आय वाले पूर्व उपनिवेशी देश, परिसम्पत्तियों, प्रौद्योगिकी अन्तर, उपनिवेशी शोषण और नंगेपन की गाथा जिसके पास भौतिक और सामाजिक अवस्थापना का विशाल जमावड़ा है, से पूँजीगत संचयन आधारित अनुकरणीय विकास-पथ से अन्तर बढ़ेगा और मजबूत होगा तथा पराधीनता स्थायित्व प्राप्त करेगी। कुछ समय के लिए मैं ईस्ट एशियन टाइगर्स के मामले को सफल पकड़कर्ता के मामलों के रूप में हवाला देता हूँ। परन्तु हाल की घटनाओं और गहन विश्लेषण ने दर्शाया है कि विशेष और अपूर्व परिस्थितियों जिन्होंने इन अर्थशास्त्रों (वास्तव में, उनमें से दो छोटे शहर राज्य होने के कारण तथा एक प्रत्यक्ष उपनिवेश भी था, मुश्किल से किसी तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में सुसंगत हैं) कुल मिलाकर स्वतंत्र, स्वायत्त, लोगों को शक्ति-सम्पन्न बनाने वाले, पूर्णतावादी तथा न्यायसंगत विकास के मामले बिल्कुल नहीं हैं जिन्हें गरीब तथा कमजोर अर्थव्यवस्थाएँ अपनी भूमिका प्रतिदर्श के रूप में ले सकती है।

यह सत्य है कि काफी देशों के लिए समयानुक्रम और व्यापक प्रतिनिधित्व आँकड़े पूँजी संचयन की दर (तकनीकी और संगठनात्मक स्वरूप) में दीर्घावधि परिवर्तनों के बीच मजबूत संयोजन दर्शाते हैं। परन्तु यह प्रमाण पूँजी संचयन जिसमें पूँजी संचयन पर आय का प्रभाव भी शामिल है, की दर और प्रतिदर्श के अवधारकों के प्रश्न का उत्तर नहीं देता है।



## 6.8 अन्तरराष्ट्रीय पूँजी प्रवाह

उपरोक्त उपसंहार उन सहवर्ती सिद्धांतों के साथ तालमेल बिठाता है जो विकासपरक परिवर्तनशील राशि के रूप में पूँजी संचय को प्राथमिकता तथा निर्णय करने की शक्ति प्रदान करते हैं। इस सहवर्ती प्रस्थापना के अनुसार गरीब, कम विकसित विलम्ब से औद्योगिकीकृत देशों जिनकी प्रौद्योगिकीय क्षमताएँ कम तथा राज्य कमजोर हैं, को धनी और आरंभ में औद्योगिकीकृत देशों से अन्तरराष्ट्रीय पूँजी 'अंतरणों' पर निर्भर रहना पड़ता है ताकि वे कम आय, कम बचत, कम पूँजी संचयन के विद्वेषपूर्ण क्षेत्र से स्वतंत्र हो सकें और संचयी तरीके से कम आय के साथ काम कर सकें।

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति से, विशेषकर संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति हैरी ट्रूमैन के अक्सर उद्धृत आरंभिक भाषण जिसमें 'कम विकास' को मान्यता दी गई थी तथा 'विकास' (वास्तव में, तथाकथित कम विकसित विश्व को धनी व पहले औद्योगिकीकृत देशों की एक हल्की अनियंत्रित रूप से जुड़ी हुई कार्बनप्रति बनाने का प्रयास), की चुनौती को स्वीकार किया गया था, के बाद पूँजी अन्तरणों की नीति विकास अर्थशास्त्र और नीति का एक महत्वपूर्ण आलम्ब रही है। विविध स्तरीय एजेन्सी के रूप में अपनी क्षेत्रीय सहायक शाखाओं के साथ विश्व बैंक अत्यधिक आकर्षक कारोबार में लगा हुआ है जिसे विकास वित्त-पोषण कहा जाता है। विभिन्न रूपों में जैसे सरकारी विकास सहायता (DDA) अर्थात् रियायती दर पर कर्जे, अनुदान, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (FDI), पोर्टफोलियो निवेश, बाहरी (निजी लेखा) उधार, व्यापार क्रेडिट आदि को प्रापकों तथा 'आदाताओं' / उधारकर्त्ताओं / निवेशकों दोनों द्वारा अन्तरराष्ट्रीय विकास सहयोग का महत्वपूर्ण स्तम्भ माना जाता है।

ये प्रवाह द्वि-अन्तर सिद्धांत के रूप में न्यायनिर्णीत थे अर्थात् बचतों की कमी को पूरा करना (कम स्तर वाले औद्योगिकीकरण, प्राथमिक पण्यों की आपूर्ति और माँग दोनों की कम तन्यता द्वारा 'प्रभावित' निर्यात निराशावाद के क्रम में)। तथापि, यह प्रतिधारित था कि पूँजी प्रवाह अपने साथ 'प्रगतिपूर्ण' उच्च उत्पादकता प्रौद्योगिकी, नए उत्पाद लाते हैं जो उत्पादन चक्र को पूरा कर सकते हैं और अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण में सहायता कर सकते हैं। इस प्रकार तर्क दिया गया था कि अन्तरराष्ट्रीय पूँजी प्रवाह के परिणामस्वरूप व द्धिगत आय प्रवाह और प्रौन्नत उत्पाद-मिश्रण गरीब, औसतन कम आय वाले देश में विकास की शुरुआत और स्थायित्व के लिए सहायता कर सकते हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद से पूँजीगत आन्दोलन की प्रक्रियाएँ विभिन्न स्वरूपों में जारी है तथा आरंभ में औद्योगिकीकृत देशों में विलम्ब से हुए औद्योगिकीकृत देशों को वित्त-पोषण होता रहता है यद्यपि संसाधनों के प्रतिकूल प्रवाह की आशंका भी व्यक्त की गई है।

विभिन्न परिवर्तनशील घटकों और प्रक्रियाओं जो साथ-साथ काम करती हैं, के प्रभाव को पथक् करने में परेशानी के परिणामस्वरूप, अन्तरराष्ट्रीय पूँजी प्रवाहों के प्रभाव का एक स्वतंत्र, पथक् समग्र अनुभवजन्य निर्धारण प्रस्तुत करना मुश्किल है। तथापि, कमजोर अर्थव्यवस्थाओं की संचयात्मक ऋण देयता में उस अनुपात तक व द्धि हुई है जितने अनुपात में प्रायः ऋण सेवा राशियाँ ताजा नए प्रवाहों से अधिक होती है। इस प्रकार, एक निबल आधार पर, कोई देश पूँजी-घाटे वाली अर्थव्यवस्था से पूँजी-आधिक्य वाली अर्थव्यवस्था को संसाधनों के प्रतिकूल प्रवा के लिए कतिपय उपाय करता है। तब सरकारी विकास सहायता के महत्व से विदेशी प्रत्यक्ष निवेश और विदेशी पोर्टफोलियो निवेश में कमी आई है। अल्पकालिक प्रत्याशित पूँजी आन्दोलनों ने ज्योतिष-आधारित अनुपातों को प्राप्त कर लिया है जिससे



अर्थव्यवस्थाएँ अस्थिर हुई है। विश्व विकास प्रतिवेदन 2000-01 के अनुसार, 1999 में कुल प्रवाह 8289.20 करोड़ अमेरिकी डालर थे। इनमें से निजी लेखा वाले प्रवाह अधिकतम 7144.60 करोड़ अमेरिकी डालर जबकि सरकारी विकास सहायता 619.30 करोड़ अमेरिकी डालर और गैर-सरकारी संगठनों द्वारा अनुदान 223.20 करोड़ अमेरिकी डालर थे। इन आँकड़ों में रूस और अन्य संक्राम्य अर्थव्यवस्थाओं की जाने वाली राशियाँ भी शामिल हैं। यह उल्लेखनीय है कि विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अभी भी उन सम द्र देशों में अधिक है जो अमीर, निवेशक और प्रापक अर्थव्यवस्थाओं के बीच लाभप्रदता की भूमिका, माँग (बनाम आवश्यकता) और पारस्परिक संपूरकता को विशेष रूप से दर्शाते हैं। संक्राम्य कम्पनियाँ, अपनी शाखाओं और जुड़ी हुई संस्थाओं के साथ, मुख्य मुद्रा सट्टेबाजी में सक्रिय सहभागिता और जो विलयन और अधिप्राप्तियों के माध्यम से भूमंडलीय बाज़ार में निगमिय नियंत्रण के लिए मुख्य खिलाड़ी हैं। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का प्रचुर अंश उनकी शाखाओं में मूल राशि का है तथा कुछ लाभ अन्तरण मूल्यांकन के माध्यम से अनुचित रूप से प्राप्त किए जाते हैं। उत्पाद में मिलावट, प्रौद्योगिकी, ऊर्जा उपयोग की प्रमात्रा और प्रतिदर्श, उत्कृष्ट, राष्ट्रीय कम्पनियों के प्रमुख प्रबन्धकों के बीच अत्यधिक वेतन और परिलब्धियों का भुगतान करने वाले छोटे देश, कर चोरी और अपवचन, राजनीतिज्ञों और नौकरशाहों को रिश्वत, उपभोक्तावाद को सक्रिय बढ़ावा, स्थानीय-राष्ट्रीय संस्कृतियों का सम्मान न करना, मानदण्ड और प्रसार की अर्थव्यवस्थाओं से लाभ के लिए एकसमान उपभोग प्रतिदर्श, वित्तपोषण और मुद्रा बाज़ार से प्रत्याशित लाभ उठाना आदि उन प्रमुख राष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के लक्षण हैं जो आमतौर पर निर्धन और धनी देशों के गरीब आदमी और औरतों के दृष्टिकोण से ऋणात्मक माने गए हैं। विशेष रूप से अपनी उत्पादन सुविधाओं की अवस्थिति को हस्तांतरित करके श्रमबल और रोज़गार पर उनके प्रभाव को स्वीकारात्मक नहीं माना गया है। इसी प्रकार, उन्होंने गरीब देशों की राष्ट्रीय संप्रभुता को विभिन्न तरीकों से कमजोर किया है और अन्तर्मुखी और लोग-संकेन्द्रित नीतियों के बलों को कमजोर किया है। इनमें सर्वाधिक गंभीर स्थिति उनकी बढ़ती हुई पराधीनता के रूप में उनका प्रभाव है। किसी भी मामले में, उनका अनुभव समामेलित आधुनिकीकरण के गैर-संभव और गैर-अनपेक्षित दोनों को विशेष रूप से दर्शाया है। भारत जैसे देश में, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश और बाहरी वित्त-पोषण अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण हैं क्योंकि विदेशी पूँजी को लाल-चटार्ई व्यवहार खोलने अथवा देने के बाद भी, उन्होंने आमतौर पर 25 प्रतिशत से अधिक के निवेश की समग्र दर की तुलना में मुश्किल से सकल घरेलू उत्पाद के 2 प्रतिशत से अधिक प्राप्त किया है।

## 6.9 राज्य की भूमिका

उपरोक्त पूँजी संचयन और अन्तरराष्ट्रीय आन्दोलनों की भूमिका के निदर्शी, संक्षिप्त विश्लेषण से विकास के प्रमुख इंजन (आरंभिक औद्योगिकीकृत पूर्व-उपनिवेशी शक्तियों के प्रभुत्व के अधीन अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों द्वारा अनेक तरीकों से समर्थित) के रूप में पूँजी संचयन के माध्यम से विकसित करने के लिए सीमाओं, विकृतियों, तात्कालिक और सचेतन प्रयासों की गैर-वांछनीयता को दर्शाए जाने की आशा की जाती है। वास्तविक उत्पादन में वृद्धि होनी चाहिए तथा इस प्रयोजनार्थ, आमतौर पर पूँजी संचयन की विशेष रूप से उस समय आवश्यकता होती है जब उत्पादन के अन्य घटक उपलब्ध हों। परन्तु यह अनेक उच्च परिणामों का उपाय है और गरीब देशों में प्रचलित 'सामाजिक-आर्थिक संस्थागत ढाँचे' में परिवर्तनों का ऐसा परिणाम होना चाहिए जो दीर्घ और अल्प स्तरों पर विकास का विरोध करते

हैं। अपरिवर्तित को छोड़कर तथा, वास्तव में, विद्यमान दुष्क्रियात्मक, विकृत तथा विकास विरोधी संरचनाओं, प्रतिष्ठानों और सम्बन्ध को मजबूत बनाकर तथा इस प्रकार के फ्रेमवर्क में प्रभुत्व, मुख्य उपस्कर के रूप में पूँजी निर्माण पर निर्भर करते हुए निराशाजनक स्थिति, संक्राम्यता, उत्पीड़न तथा मानवीय और राष्ट्रीय क्षमता से इंकार को मजबूती प्रदान होनी चाहिए। विकास मौलिक रूप से एक सामाजिक-आर्थिक अभ्यास है (सारांश में, विकास राष्ट्रीय, सामुदायिक और व्यष्टि की शक्ति सम्पन्नता का श्रेष्ठतम जोड़ है।), इसके तकनीकी आर्थिक पहलुओं को उनके अन्यायपूर्ण, उत्पीड़क लक्षणों को अलग करके पहले द्वारा नियंत्रित सहायक पहलुओं के रूप में शामिल किया जाना चाहिए यद्यपि सशक्त पुनर्गठन एक आवश्यक पूर्वपिक्सा हो सकती है। संसाधन अंतरण नीति की लोकप्रियता, संयुक्त राष्ट्र संघ के कभी न पूरे होने वाले अमीर से गरीब देशों को सहायता के लक्ष्य ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे उन्हें तथाकथित दाता और प्रापक देशों में शासक प्रतिष्ठानों के हितों को पूरा करने के लिए उसकी वंशानुगत क्षमता से व्युत्पन्न किया गया हो। पहली स्थिति में, इन अंतरणों से अपने माल और सेवाओं (निर्यात) के लिए माँग तथा बाज़ार पैदा होता है। गरीब देशों के प्रतिष्ठित लोगों के लिए क्षेत्र के साथ कठोरता से पेश आने तथा बचतों को उत्पन्न करने के लिए आवश्यकता को कम करने से अलग ऐसे प्रवाहों से प्रौद्योगिकी ब्राण्ड नाम तथा उपभोग के ऐशो-आराम वाले स्तरों के लिए अवसरों तक पहुँच बनाते हैं और विकास का भ्रम पैदा करने में सहायता करते हैं। किसी भी हालत में एक असमान समाज में, संस्थागत संरचनात्मक परिवर्तन किए बिना संसाधन का अन्तर्विष्टीकरण उत्कृष्ट स्थिति में बैठे हुए लोगों को असमानुपाती लाभ देता है।

परम्परागत विकास अर्थशास्त्र की PED समालोचना परिवर्तनशील पूँजी संचयन की नीति की निर्णायक जाँच से परे है। यह सच है कि जब तक 1970वें दशक के प्रथम अर्द्धांश में विकास अर्थशास्त्र में 'प्रति-क्रांत' नहीं हुई तब तक जिसमें सामाजिक कल्याण प्रतिष्ठानों को संतुष्ट करने के साथ-साथ, पूँजी संचयन, औद्योगिकीकरण और आर्थिक विकास की प्रक्रियाओं को सक्रिय बनाने, निदेशित करने तथा प्रत्यक्ष तौर पर प्रेरित करने में राज्य की मुख्य तथा अग्रणी उत्प्रेरणात्मक, उद्यमी भूमिका पर थोड़ा मतभेद था। सक्रिय स्थायी विकास नीति के व्यापक मानदंडों के भीतर, वास्तव में, प्राबल्यता में अंतर, सूक्ष्म भेद, एजेंसियों की अभिरुचियाँ, उपस्कर और संगठनात्मक स्वरूप, स्थायी व्यवधानों का टिकाऊपन तथा उनके विभिन्न घरेलू तथा बाहरी सामाजिक तथा आर्थिक समूहों से सम्बन्ध थे। आत्मविश्वास और राष्ट्रमंडली में सापेक्षतः स्वतंत्र स्थान हेतु संघर्ष के लिए उपनिवेशवाद के बाद के आवेग पर भी कुछ अपवाद थे। उन समाजों में जहाँ राज्य शुरुआती उद्योगपतियों के ऐतिहासिक अनुभव से निराव त अपने संघटकों के साथ अपेक्षाकृत प्रगतिशील और बेहतर संगठित संस्थाओं में था, राज्य ने संचयन की प्रक्रियाओं को निदेशित किया तथा उन पर नियंत्रण रखा और सफलतापूर्वक शक्ति और सक्षमता के अन्य वैकल्पिक केन्द्रों का, विशेष रूप से उन देशों में स जन किया जिनकी विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के प्रति प्रतिबंधित पहुँच थी। किसी भी मामले में प्रमुखतः राज्य से राज्य स्तर पर 'अनुदान' अथवा रियायती विदेशी सहायता ने उस समय के विकास की गति बढ़ाने में निर्णायक भूमिका निभाई जब तक 1970वें दशक के शुरुआत में प्रथम तेल आघात नहीं लगा। भारत में, मूलभूत आर्थिक और भौतिक अवसंरचना मुहैया कराने तथा भारी और मौलिक पूँजीगत एवं अन्तर्वर्ती सामान उद्योगों की स्थापना करने, बचत और निवेश की दर में वृद्धि करने, क्षेत्रों में निजी उद्योग क्षेत्र के विकास का विनियमन, मार्ग निदेशन और समर्थन करने तथा विशेष रूप से कमजोर वर्गों के लोक कल्याण के कुछ नियोगों को लागू करने के लिए लोक क्षेत्र को अग्रणी भूमिका, विशेषतया प्रत्यक्ष उद्यमी भूमिका दी गई थी। इन ऐतिहासिक कार्यों को पूरा

करने में वास्तव में काफी लम्बा रास्ता तय करना पड़ा यद्यपि यह प्रक्रिया स्थायी रूप नहीं ले सकती तथा लोक क्षेत्र और राज्य आर्थिक क्षेत्र में प्रचंड आक्रमण का शिकार हुई।

---

## 6.10 विकास के अर्थशास्त्र में प्रतिकारी क्रांति : उदारीकरण, निजीकरण, भूमंडलीकरण (LPG) पैकेज

---

विकास प्रक्रियाओं में राज्य की क्रियाशीलता पर व्यापक सामंजस्य में, राज्य के चरित्र तथा राज्य की क्षमताओं और शक्तिसम्पन्न सामाजिक समूहों जो विकास स्थिति के प्रतिद्वन्द्वी थे, की भूमिका, स्वरूप, निपुणता तथा रणनीतिक स्थिति के प्रश्न पर शुरुआती दौर में अधिक ध्यान नहीं दिया गया। दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य में व्यापक, सामान्य सामाजिक हितों का प्रतिनिधित्व करने वाला एक वर्ग तटस्थ राज्य जो विद्यमान और भविष्य की बहिर्मुखताओं को हिसाब में लेकर तथा संकीर्ण दृष्टि पर काबू पाते हुए हुज्जती बाधाओं पर सहयोजित कार्य करने में सक्षम था, विकास कार्यों को करने के लिए प्रभावी एजेंसी के रूप में माना गया था। इसका कार्य, आम सामाजिक सामंजस्य, विशेष रूप से स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की आरंभिक अवधि में राष्ट्रवादियों के शुरुआती उल्लास उन्माद पर नियंत्रण रखना माना गया था। भारत के कारोबारी वर्गों की लोक क्षेत्र के प्रति भूमिका और दृष्टिकोण, आरंभिक समर्थन परन्तु इसे कम करने के लिए स्थायी संघर्ष और इसकी व्यापक अभिरुचियों के तालमेल से इसके वास्तविक कार्यों में जोड़-तोड़ करना राज्य की भूमिका के प्रति आरंभिक उल्लासमूलक अभिगमों की सहजता को विशेष रूप से प्रकट करते हैं। तथापि, अनुभव प्राप्त होने पर राज्य के वास्तविक लक्षण, क्षमताओं, समाज, विशेष रूप से कारोबारी वर्ग और संगठित कर्मी वर्ग के साथ उसके सम्बन्ध और इसकी आन्तरिक संगठनात्मक गतिशीलता के प्रभाव से सम्बन्धित अनुभूतियाँ हुईं जिनके कारण कुछ मामलों में चरित्र-चित्रण हुआ जैसे सौम्य-राज्य अथवा ऐसा राज्य जहाँ कोई समाधान न हो अपितु समस्याएँ जन्म लेती रहें अथवा राज्य का विकास अथवा सुधार करने की आवश्यकता जिससे उसे विकास के अग्रदूत के रूप में प्रभावी तौर पर इस्तेमाल किया जाए। राज्य आविष्कारों को कुछ निर्णायक पहलुओं की नज़रन्दाजी ने निराशा, मोहभंग को जन्म दिया जो राज्य के प्रबल समर्थकों की आवाज को दबाने के लिए पर्याप्त मजबूत थे। अमीर, शक्तिसम्पन्न राष्ट्रों में कई परिवर्तन जैसे पूँजीवादी विस्तार के स्वर्णिम युग का अंत, बढ़ती हुई बेरोज़गारी और मुद्रास्फीति, शीतयुद्ध, भू-राजनीति का बोझ, नव औद्योगिक देशों के निर्यातों की प्रतिस्पर्धात्मक शक्तियों का उभरना तथा अपेक्षाकृत सफल पूर्व एशियन टाइगर्स द्वारा कुछ अन्तरिक्ष पर कब्जा करना और इसी के साथ निकट भविष्य में पूर्ण रोज़गार के लिए लोकव्यय और कर्मी वर्ग के दावे द्वारा वर्चस्व प्राप्त कर रही घरेलू अर्थव्यवस्था तथा गंभीर सामाजिक सुरक्षा के लिए अवलम्ब धनी अमीर देशों में स्थायित्व विरोधी निगमित बलों का मजबूत करने को प्रवृत्त हुए। इससे कमजोर देशों में असंतोष और मोहभंग की मजबूत धारा प्रकट हुई। उनकी वृद्धि महँगे और अस्थायी रूप में बदल गई। उनकी गरीबी, बेरोज़गारी, अभावग्रस्तता तथा असमानताओं की मुख्य समस्याएँ राज्य क्षेत्र की अप्रत्याशित वृद्धि दर, उद्योगीकरण और विकास के होते हुए भी स्वराघात अंकित कर रही थी। अपेक्षाकृत कई गरीब देशों में अधिक मजबूत कारोबारी तथा औद्योगिक वर्ग प्रतीत हुए जो राज्यवाद के अन्दर औपचारिक और अनौपचारिक रूप से अपने नियंत्रण वाली दोनों युक्तियों के सहारे फले फूले। प्रत्येक स्थिति में, राजनीतिक और आर्थिक शक्तियों का बदला हुआ संकेन्द्रन तथा केन्द्रीकरण था। लोकप्रिय बलों ने किसी महत्वपूर्ण डिग्री को लाभ नहीं पहुँचाया, विशेष रूप से सापेक्ष तौर पर उनकी वृद्धि संक्रिया में प्रमुखतः

उद्देश्यपरक सीमित सहभागिता थी और इसी कारण वे परिवर्तनशील प्रमुख लक्ष्य के रूप में राज्य के नेतृत्व वाले उद्योगीकरण और सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धि के प्रति कोई गहरे सम्बन्ध तथा वचनबद्धता विकसित नहीं कर पाए। संगठित क्षेत्र बहुत छोटा था तथा विशाल और विकासोन्मुख अनौपचारिक क्षेत्र संवर्धित तौर पर सीमांतक हो रहा था।

कई पहलुओं वाली उलझनों से प्रेरित होकर और उनका लाभ उठाकर विकास सिद्धांत में 'प्रति-क्रांति' ने समाजभर में राज्य नेतृत्व वाली (लोकक्षेत्र और लोक निवेश आधारित) विकास प्रक्रियाओं जो अभी तक प्रमाण थीं की सीमित चिन्ताओं को दूर करने का प्रयास किया। ऋण बोझ की चमत्कारिक वृद्धि, विदेशी खाते की अन्तिम सुभेद्यता तथा राज्य का तेज वित्तीय संकट उन शक्तिशाली बहुस्तरीय वित्तीय संस्थानों के लिए फायदेमंद सिद्ध हुआ जो बढ़ते हुए क्रम में भूमंडलीय वित्तीय संस्थाओं और TNCs की उस कार्यसूची को अपना रहे थे जिससे, विशेष रूप से विद्यमान समाजवादियों के पतन से पैदा हुई वैचारिकी सुखभ्रान्ति के क्षणों में, विश्व अर्थव्यवस्था पर काबू पाने की अनियंत्रित कार्यसूची को आगे बढ़ाया जा सके। इससे बार-बार बाज़ार आधारित नई उदारवादी कार्यसूची जो नई 'विकास नीति' के रूप में वाशिंगटन कान्संसस के नाम से लोकप्रिय थी, को अपनाया गया। इसी के साथ इसे अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा निधि – विश्व बैंक की शर्तों पर दर्जनों ऋण-ग्रस्त, गरीब और कमजोर अर्थव्यवस्थाओं पर लागू किया गया जिससे उन्हें उनके विदेशी मुद्रा नकदी संकट से निजात मिल सके। भारत में, ढाँचागत समायोजन का यह कार्यक्रम समान संकट जैसी स्थिति की प्रतिक्रिया में 1990 के दशक के आरंभ में अपनाया गया था। इसके मुख्य घटक थे : अविनियमित, बाज़ार नियंत्रित विदेशी और स्थानीय पूँजी के पक्ष में प्रमुखतः पहली स्थिति में प्रत्यक्षतः भागीदारी और नियामक दोनों भूमिकाओं से राज्य की महत्त्वपूर्ण वापसी। इसी नीति में उन लोक उद्यमों का निजीकरण भी अन्तर्ग्रस्त था जिन्होंने अब तक कई अर्थव्यवस्थाओं पर वर्चस्व बनाए रखा था। विश्व व्यापार संगठन के नियमों (भूमंडलीकरण) के अनुसार, कमजोर देश की अर्थव्यवस्थाओं को मुक्त करने तथा बाज़ार बलों की अनियंत्रित कार्यवाही पर सुविधाजनक प्रतिबंधों का लगाया जाना नए-उदारवादी विकास एजेंडों के अन्य घटक थे। इस पैकेज से अवांछित उच्च विकास के युग में प्रवेश की कल्पना की गई थी जिससे, बदले में, अधोपतन और उत्कर्षण प्रक्रियाओं से गरीबी को कम करने की उम्मीद की गई थी। 1990 का सम्पूर्ण दशक इस प्रतिदर्श को विशाल पैमाने पर लागू करने का साक्षी था परन्तु इसका परिणाम अधिक कुंठाग्रस्त, अस्थायी तथा गरीब विरोधी और कर्मी वर्ग विरोधी था। वास्तव में विकास गति को जारी रखना मुश्किल हो गया क्योंकि उदारवादी नीतियों के संकीर्णतः केन्द्रित विकास और रोज़गार विरोधी होने के कारण क्षमताएँ अप्रयुक्त रहीं और निवेश के लिए माँग कमजोर पड़ गई तथा वित्तीय रूप से बाधित राज्य मशीन उद्योग के पुनरुत्थान का कार्य नहीं कर सके। इस प्रकार के विनाशपूर्ण परिणामों की प्रतिक्रिया में, उदारीकरण-निजीकरण-भूमंडलीकरण (LPG) पैकेज से व्यापक मोहभंग हुआ है जो विकास अर्थशास्त्र में प्रति-क्रांति का मूल है। उसके विरोध में और असैनिक समाज संस्थाओं की पहल के रूप में, कई आधारभूत आन्दोलनों ने मिथ्या विकास सिद्धांतों और उनके नीति पैकेज को निरावत करने तथा लोकप्रिय जनसमुदाय को अपने हितों, स्वतंत्रता और लोकतांत्रिक व्यवस्था के बचाव में सक्रिय होने के लिए अपने प्रयासों में छोटी-सी शुरुआत है। वास्तव में, अन्तरराष्ट्रीय ऋण संकट और वाशिंगटन कान्संसस के बीच मजबूत सम्बन्ध होने के कारण, यह तर्क दिया गया है कि LPG पैकेज नीति मूल रूप से अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय संसाधनों के अन्तरण की माँग को बनाए रखने के साथ-साथ ऋण-संग्रहण युक्ति है। निश्चित तौर पर, यह विकल्प लंगड़ाते हुए, आधे-मन से अप्रभावी राज्य नियंत्रणवाद में वापस

जाने के लिए नहीं है जो इसके सकल-घरेलू उत्पाद केन्द्रित रूपान्तरण तथा शक्तिशाली वर्गों, ऋणों, अभिप्रेत व्यवसायों के कारण मजबूतों को मजबूत तथा कमजोरों को कमजोर बनाती है। कमजोरों को शक्तिशाली बनाने के स्थान पर उन्हें और शक्तिहीन करना विकास अर्थशास्त्र में प्रति-क्रांति का परिणाम था। उन विकल्पों के लिए खोज जारी है जो पैत्रिकतावादी, ऊपर-नीचे, जिज्ञासु, अर्थ-विरोधी तथा अत्यधिक केन्द्रित नहीं है, जो दक्षिण देशों में प्रतिकृति नहीं करते हैं, निराशाजनक तथा संक्राम्यता-त्रस्त गलत-विकास नहीं है जैसा कि उत्तर में देखा जाता है। यह निश्चित रूप से प्रमुख कार्य है जिसके सामने विकास की राजनीतिक अर्थव्यवस्था की चुनौती है। चूँकि उदारीकरण अवधि की विकास गति को जारी नहीं रखा जा सका तथा एक विलम्बित अवस्फीति अथवा अधोन्मुखी चरण स्थापित हो चुका है जो रोजगार में प्रतिकूल रुझान के साथ भारत में लोगों की जीविका और सुरक्षा के लिए खतरा बना हुआ है तथा इसके लिए विकल्पों की तलाश करना भारत में वैध कार्रवाई है।

---

## 6.11 राजनीतिक अर्थव्यवस्था अभिगम की रूपरेखा

---

पूर्वगामी विश्लेषण स्पष्ट रूप से ऐसा एजेंडा निर्धारित करता है जिसे PE अभिगम द्वारा सम्बोधित किया जाए। विश्व में लगातार बढ़ती हुई असमानताओं के परिणामस्वरूप विकास संभाषण में राष्ट्र विश्लेषण की इकाइयों (उदाहरणार्थ 'प्रगतिशील' और 'पिछड़े' राष्ट्र) के रूप में जाने जाते हैं। राजनीतिक विजय की ऐतिहासिक विश्वस्तरीय प्रक्रियाओं, प्रजातीय मार्जन, वस्तुओं, घटकों और वित्तीय बाज़ार में विभिन्न प्रकार के आर्थिक संव्यवहारों के माध्यम से एकपक्षीय लाभकारी आर्थिक वर्चस्व तथा सांस्कृतिक प्रभुत्व जैसा कि विगत पाँच शताब्दियों और उससे पहले ध्यानपूर्वक देखा गया है, ने वर्चस्व और शक्तिहीनता के इन प्रतिदर्शों को बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। परन्तु एक राष्ट्र के भीतर क्षेत्रीय, अन्तर-राज्यीय, अन्तर-वैयक्तिक, अन्तर-वर्गीय, अन्तर-व्यवसायी और कई अन्य आयामों में विभेदन तथा स्तरीय-विन्यास विद्यमान युग के उद्घोषित लक्षण नहीं है। विगत पाँच शताब्दियों का ऐतिहासिक पर्यावलोकन निश्चित रूप से दर्शाएगा कि सम्बद्ध देशों की आन्तरिक सामाजिक-आर्थिक स्थिति और संस्कृति की तीव्र अंतरराष्ट्रीय विषमताओं तथा आधुनिक आर्थिक विकास की प्रक्रिया तक असमान पहुँच तथा उनसे लाभों को किस प्रकार योगदान दिया है। ब्रोडेल के अनुसार इस अवधि को पूँजीवादी विकास का युग माना जा सकता है जिसका विसरण, सम्प्रेषण, बलपूर्वक अधिरोपण अथवा सचेतन अपनाया जाना अपूर्ण, विषम, विभाज्य और संतुलन की स्थिति में ऐसा बना रहता है जिसने तब तक अत्यधिक बहुआयामी लागती खर्चे पर अप्रत्याशित क्षमता और अवसरों का स जन किया जो एक अत्यधिक छोटे अल्पसंख्यक वर्ग द्वारा राष्ट्रों के अन्दर और उनकी सीमाओं से बाहर किए गए आधिपत्य नियंत्रण के कारण मानवता के अत्यंत विशाल बहुसंख्यक वर्ग के लिए भ्रांतिमात्र बने रहते हैं। PE अभिगम इस ऐतिहासिक, पूर्णतावादी, दीर्घकालिक बहुमूल्य परिप्रेक्ष्य में विकास की चुनौती पर विचार करता है। इसके अनुसार PE विकास निरूपण और नीति जो अपने स्वभाववश "अपनी निजी एकीकृत और योजनाबद्ध प्रणाली" (एस.टी. सुरू) अपनाता है और कई अनुशासनों को परिवेष्टित करता है तथा उन्हें समेकित करता है, विकास का ऐसा अभिगम तलाशता है जो एक साथ आक्रमणकारी तथा अनाक्रमणकारी दीर्घ, सूक्ष्म और अति सूक्ष्म है तथा संकीर्ण तथा बनावटी अनुशासनात्मक सीमाओं से ऊपर उठ जाता है। यह अवश्यमेव सार्वभौमिक रूप से वैध और सुसंगत विकास-पथ से निर्धारित नहीं करता है अपितु इसे स्वयं विकास से अपवंचित लोगों के लिए छोड़ देता है क्योंकि वे स्वयं चुने हुए और स्वयं निर्मित पथ पर यात्रा करते हैं।



PED का कार्य अवश्यमेव तथा मात्र वैचारिक नहीं है (निश्चित रूप से किसी संकीर्ण, गैरमिलनसारी विचाराधारा की बाध्यता से परे है)। इसे व्यावहारिक दैनिक जीविका के मुद्दों और विभिन्न स्तरों पर दीर्घकालिक अनिवार्यताओं तथा रुझानों से संतुष्ट होना पड़ता है। इसे मान्यता दी जानी चाहिए कि बौद्धिक और व्यावहारिक क्षेत्रों पर इसकी स्पष्ट श्रेष्ठता के बावजूद, यह प्रचलित आदेश के शक्तिशाली सट्टेबाजों के हितों के साथ भलीभाँति संसक्त नहीं हो पाता। इस प्रकार यह विकास के संकीर्ण, विकृत सिद्धांतों और नए-प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रों में आवश्यक रूप से अन्तर्विष्ट विकास की तुलना में कम लोकप्रिय और शक्तिशाली है। वास्तव में बहुत कम राजनीतिक अर्थव्यवस्था अभिगमों ने आधुनिक समतुल्य उद्योगीकरण के एजेंडा को अपनाया तथा विभिन्न मूल्यों और प्राथमिकताओं के बावजूद, स्वयं के लिए पथक्, स्वतंत्र तथा व्यापक रूप से स्वीकार्यताक तराश नहीं कर सके। विश्व के कई हिस्सों में कई विद्यमान समाजवाद की विफलता कुछ PE अभिगमों द्वारा अपनाए गए अपूर्व, आंशिक और अनुकृत एजेंडा का प्रमाण हैं। इतना इसलिए ताकि राजनीतिक अर्थव्यवस्था अभिगमों के कई किनारों पर भी, 'विकास' की विषयवस्तु और एजेंडा असमान भूमंडलीय व्यवस्था की चोटी पर स्थित आरंभिक उद्योगीकृत पूँजीवादी देशों ने अनुभव से व्यावहारिक तौर पर थोक में उधार लिया जाता है। कई बार, ऐसा वैज्ञानिक और तकनीकी क्रांति की सार्वभौमिकता के नाम दर किया जाता है। इस प्रकार, वैकल्पिक उद्योगीकरण अथवा उद्योगीकरण के विकल्पों की वकालत करने की बजाए और जहाँ तक उद्योगीकरण और विकास को पर्यायवाची माना जाए, विकास के विकल्प तथा आर्थिक अर्थव्यवस्था के कतिपय विद्यालय, वास्तव में कुल सकल असमानताओं जिन्होंने पूँजीवादी विकास-पथ को विशिष्ट पहचान दी, से बचने की उम्मीद की प्रक्रिया में, प्रमुखतः अग्रणी उद्योगपतियों के तीव्रता से और निश्चित रूप से बराबर आने तथा उनसे आगे बढ़ने के दृष्टिगत वैकल्पिक संस्थागत एजेंसियों (जैसे राज्य, सहकारिताएँ/सामूहिकताएँ) और उनके परिणाम की दलील देते हैं। अत्यधिक उच्च गति से प्रक्रिया की दूरदर्शिता के लिए उत्पादन बलों की प्रगति को दुहराने के उद्देश्य को सामाजिक उत्पादन सम्बन्धों के ऐसे भिन्न समूह का साथ चाहिए था जो अवश्यमेव, एक न्यायिक रूप से अथवा औपचारिक रूप से विभिन्न प्रकार के सामाजिक अथवा राज्य के स्वामित्व और केन्द्रीकृत, सुनियोजित लोक प्रबंधन पर आधारित हो। इसमें जीवनशैली के शब्दों में परिणामों की एकरूपता अन्तर्ग्रस्त थी जैसा कि उपभोग प्रतिदर्श में प्रतिबिम्बित था परन्तु बड़े पैमाने पर, अन्यायपूर्ण और स्वतः प्रवर्तित असमानताओं के बिना व्यापक अभावग्रस्तता तथा वाष्पशीलता में परिणत हो गया। इस प्रकार विकास का प्रतिदर्श, कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं में, विशेष रूप से भौतिक-तकनीकी कार्य स्थितियों के अनुसार उपभोग प्रतिदर्शों, उत्पाद-मिश्रण तथा जीवनशैली के प्रमुख पहलुओं को प्रभावित करने वाले भौतिक-आर्थिक पहलुओं में, औद्योगिक प्रगति के अनुकूल व्यवसाय विशेषतः ऊर्जा के बहुत ऊँचे स्तरों तथा उत्पादन की भौतिक तीव्रता और स्थानिक संकेन्द्रीकरण में अन्तर्ग्रस्त पारिस्थितिक स्थायित्व की अवहेलना के आधार पर प्रौद्योगिकीय तौर पर अवधारित किया गया था।

सैद्धान्तिक प्रणालियों के परिणामस्वरूप, कड़ी दस्तक और उत्कृष्ट लोकतांत्रिक चेतनता और वचनबद्धता के विद्यालय के पाठों, विकास के ज्ञात और अनुभवगम्य प्रतिदर्शों की पूर्व-अवधारिता अनुकृति, त्वरित, कम लागत पर, अवमान्यतः अधिक लोकतांत्रिक और जवाबदेह संस्थागत अवसर्जनों के बढ़ते हुए वकील बहुत कम हैं। स्पष्टतः, एक दवा सभी अभिगमों को उपयुक्त है सिवाय उनके जो विभिन्न और परिवर्तनशील हालातों और संदर्भों में अभेद्य हैं, ऊपर-नीचे विषय-वस्तु और डिजाइन में पितृसत्ताविद् हैं तथा अत्यधिक केन्द्रीकृत हैं तथा अव्यवहारिक और अलोकतांत्रिक हो चुके हैं। एक राजनीतिक अर्थव्यवस्था अभिगम जो लोगों की लोकतांत्रिक शक्तिसम्पन्नता के मूल्यों का समर्थन करता है, उनकी स्वतंत्रता,



गरिमा और तालमेलपूर्ण सामाजिक अस्तित्व का सम्मान करता है ऐसे विकास रूपान्तरण के लिए स्थायी नहीं हो सकता है जो अस्वैच्छिक परिणाम देता है, विदेशीकरण और निराशाजनक स्थिति को बढ़ावा देता है तथा लोगों की स्वतंत्र अभिरुचि के स्थान पर प्रतिबन्ध लगाता है चाहे वह व्यष्टिगत हो अथवा सामूहिक जनसामान्य के विशाल सामुदायिक प्रतिष्ठानों से संबंधित हो।

विकास की राजनीतिक अर्थव्यवस्था तार्किक और युक्तिसंगत आधार पर विकास के निर्धारणात्मक, पूर्व-अवधारित, सार्वभौमिक धारणा/प्रतिदर्श के सापेक्ष में कार्य नहीं कर सकती है। व्यष्टिगत, पारिवारिक अथवा सामुदायिक स्तर पर कोई भी अच्छे स्वस्थ जीवन का प्रतिदर्श सार्वभौमिक तौर पर स्वीकार्य/वांछनीय नहीं हो सकता है और न लोगों की स्वायत्तता, स्वतंत्रता और आवश्यकताओं का सम्मान कर सकता है, उदाहरणार्थ किसी एक को इन धारणाओं/प्रतिदर्शों में सामूहिक रूप से तथा मुश्किल से किए गए परिवर्तनों को मुहैया कराएँ। अतः आवश्यकता उन लोगों के अनुभव की अनुकृति में भौतिक समृद्धि के सार्वभौमिक प्रजातिकेन्द्रित, अस्वैच्छिक एजेंडा से मात्र छुटकारा पाने के लिए नहीं है जिन्होंने उसमें जल्दी शुरुआत की जिसे आधुनिकीकरण और उद्योगीकरण तथा आर्थिक-विकास/वृद्धि, निस्संदेह एक लाकुझनेट की आधुनिक आर्थिक वृद्धि के रूप में जाना गया है। निर्णायक पहलू जो विकास की राजनीतिक अर्थव्यवस्थाओं में रूपान्तरण के आवश्यक संघटक हैं और निष्पक्षता, स्वतंत्रता, मानवीय गौरव, तालमेल, प्रसन्नता आदि के उन मूल्यों पर आधारित हैं जो मानव व्यक्तित्व को पूरी तरह फलने-फूलने की अनुमति नहीं देते हैं और उसी समय सामूहिक हित के लिए योगदान करते हैं। अवश्यमेव PE अभिगम विचार की दुहरी स्थिति से बचाता है तथा इस प्रकार व्यष्टिगत और सामूहिक रूप से उन परिस्थितियों का प्रावधान करने के साथ-साथ मुक्त, बहु अभिरुचियों वाले उपलब्ध स्थान का दायरा बढ़ाता है जिनमें लोग अभिरुचि के अपने अधिकार का इस्तेमाल करने में सक्षम होते हैं। यह न्यायसंगत, सामूहिक शक्तिसम्पन्न होने का एजेंडा है जिसके साथ उसके महत्वपूर्ण अंग के रूप में नियामक सामान भी हैं।

इसके अनुसार विकास की राजनीतिक अर्थव्यवस्था उन विषमताओं और विकृतियों के उन्मूलन की पूर्व क्रिया के बिना विकास बातचीत को व्यापक बनाने और समृद्ध करने के दौरान अपने एजेंडा के साथ आगे नहीं बढ़ सकती है, जिन्होंने इसके भीतर अपना रास्ता तलाश किया है और वस्तुतः अकादमी और नीति स्तरीय विकास वार्ता और व्यवहार दोनों पर वर्चस्व बनाया है। इस प्रकार एजेंडा का स्वीकारात्मक घटक उन दिशाओं में जो अब तक विकास वार्ता में बचे हुए अथवा मंद अभिनीत चुनौतियों का मुकाबला कर सकती हैं, विद्यमान लोकप्रिय विकास वार्ता पुनः परिभाषित/पुनःअधिकल्पित करके लाभकारी अवसरों और उपस्करों को मुहैया कराता है।

---

## 6.12 सारांश

---

विकसित तथा विकासशील दोनों देशों में अमीर और गरीब के बीच भूमंडलीय दरार तथा इस तथ्य की ओर इशारा करते हुए कि विकास और आय के स्तर जीवन स्तर में अवश्यमेव सुधार सूचक नहीं है, इस इकाई में विकास की अर्थव्यवस्था और विकास की राजनीतिक के सिद्धांतों के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं और विशेष रूप से भारत के सम्बन्ध में इसकी अनुप्रयोज्यता की चर्चा की गई है। आय को एकमात्र विकास घटक नहीं बनाया जा सकता है जो अर्थशास्त्र द्वारा विशेष रूप जिस प्रकार यह धनी देशों में विकसित

थी। ऐसा विकास मुद्दों के एकाधीकरण के परिणामस्वरूप प्रतीत होता है। आय का अभिगम आधारभूत रूप से धनी देशों में आधारित बड़े निगमों के नियंत्रणाधीन पूँजी संचयन की प्रक्रियाओं को पूरा करता है। इस इकाई से पता चलता है कि एक नियामक पूर्णतावादी सामाजिक प्रक्रिया और परिणाम के रूप में विकास इसकी परिभाषा से और इसके आवश्यक तर्क के आधार पर विकास की आर्थिक व्यवस्था (PED) अथवा विकास अध्ययनों के चिन्तन का विषय है। PED अपेक्षा करती है कि राज्य और बाज़ार के अतिरिक्त, इसे असैनिक समाज प्रतिष्ठानों की सम्पूर्ण रेंज को सम्बोधित करना चाहिए और अनन्य रूप से राज्य, बाज़ार अथवा गैर सरकारी संगठनों पर केन्द्रित नहीं होना चाहिए। इकाई विकास के उपाय के रूप में पूँजी संचयन और विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (FDI) प्रवाह की सीमाओं के बारे में भी बताती है। गरीब और कमजोर अर्थव्यवस्थाओं को उनके संकट से निजात दिलाने के लिए अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) और विश्व बैंक द्वारा सुझाए गए उदारिकरण-निजीकरण-भूमंडलीकरण (LPG) पैकेज जिसने राज्य को बड़ी वापसी का सुझाव दिया था, की मात्र मोहभंग में परिणित हुई है। एक राजनीतिक अर्थव्यवस्था अभिगम उस विकास युगान्तर के लिए खड़ा नहीं रह सकता जो लोगों की स्वतंत्र अभिरुचियों पर प्रतिबन्ध लगाता हो तथा जिसके पास विकास का कोई पूर्व-निर्धारित सार्वभौमिक प्रतिदर्श न हो।

## 6.13 अभ्यास

- 1) क्या देशों में आय के स्तरों के प्राक्कलन विकास के स्तर के यथार्थ सूचकांक के रूप में लिए जा सकते हैं? उदाहरण देकर स्पष्ट करें।
- 2) विकास की राजनीतिक अर्थव्यवस्था (PED) के सिद्धांतों का क्या एजेंडा है? PED के महत्त्वपूर्ण पहलू क्या है?
- 3) आर्थिक विकास में पूँजी संचयन और अन्तरराष्ट्रीय पूँजी प्रवाह की क्या सीमाएँ हैं?
- 4) विकास अर्थशास्त्रों में LPG पैकेज पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

तालिका 1 : जनसंख्या एवं राष्ट्रीय आय

	जनसंख्या (करोड)	सकल राष्ट्रीय आय (अरब अमेरिकी डॉलर)
निम्न आय वाले देश	2417	1008.4
मध्यम आय वाले देश	2665	5285.5
उच्च आय वाले देश	896	23701.7
विश्व	5978	2994.6

स्रोत: वर्ल्ड डेवलपमेंट रिपोर्ट-1999-2000

तालिका 2 : गरीबी के सूचक

प्रतिदिन 1 डॉलर पर निर्भर गरीब (करोड़)

प्रतिदिन 2 डॉलर पर निर्भर गरीब (करोड़)

पूर्वी एशिया एवं पैसिफिक	452	267	101	65	1089	885	472	323
चीन को निकालकर	92	54	20	9	285	252	187	115
यूरोप एवं केंद्रीय एशिया	7	18	9	6	44	98	58	97
लैटिन अमेरिका एवं कैरिबियन	79	61	58	43	167	159	162	133
मध्य एशिया तथा उत्तरी अफ्रीका	6	6	6	5	59	85	80	58
दक्षिण एशिया	495	522	411	297	976	1095	1214	1078
सब-सहारा अफ्रीका	292	302	426	261	388	489	690	637
योग	1276	1175	1011	777	1718	2812	2675	2275